सहायक वाचन

कक्षा 7

सत्र: 2026-27

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर

यह पाठ्यपुस्तक शासकीय संपत्ति है। इसका क्रय-विक्रय अवैधानिक है।

प्रेरणास्रोत
डॉ. कमलप्रीत सिंह (भा.प्र.से.)
सचिव, स्कूल शिक्षा विभाग, छत्तीसगढ़

मार्गदर्शक
ऋतुराज रघुवंशी (भा.प्र.से.)

संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छ.ग., रायपुर

सलाहकार

जे.पी. रथ
अतिरिक्त संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद् छ.ग., रायपुर

के. कुमार
संयुक्त संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद् छ.ग., रायपुर

समन्वयक
कौस्तभ चटर्जी (सहायक संचालक)
डॉ.डी.के.बोदले (से.नि.सहायक प्राध्यापक)

विषयवस्तु चयन तथा संपादन
डॉ. चितरंजन कर, श्री बलदाऊ राम साहू

विषय विशेषज्ञ
श्री बलदाऊ राम साहू, श्रीमती रजनी शर्मा, डॉ. ललित साहू

लेखन समूह
श्री विनय शरण सिंह, श्री श्याम नारायण श्रीवास्तव , श्री सीताराम साहू,
श्री पोखन लाल जायसवाल, श्री द्रोण साहू, श्रीमती मल्लिका रुद्रा,
श्रीमती प्रिया जोशी, श्रीमती रजनी शर्मा

टंकण
श्री डीकेश्वर वर्मा, कु.ईशा श्रीवास्तव

आवरण, पृष्ठांकन एवं लेआऊट डिजाईन
हिमांशु वर्मा, सुधीर कुमार वैष्णव

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर

आमुख

छत्तीसगढ़ स्कूली शिक्षा में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद की पुस्तकों को अनुकूलित कर बच्चों को राष्ट्रीय स्तर के समतुल्य लाने का प्रयास किया जा रहा है, ताकि राज्य के बच्चे किसी भी स्तर पर कमतर न रहें। साथ ही वे राज्य के पर्व-परंपराओं और कला- संस्कृति से भी परिचित हो सकें। इस उद्देश्य से छत्तीसगढ़ शासन स्कूल शिक्षा विभाग ने कक्षा 3 से 8 तक के विद्यार्थियों के लिए सहायक-वाचन निर्माण करने का निर्णय लिया है। इस पुस्तक के माध्यम से वाचन के प्रमुख उद्देश्य, जैसे- पठन में रुचि का विकास, अर्थ ग्रहण करने की क्षमता, अभिव्यक्ति कौशल का संवर्धन, कल्पनाशीलता एवं चिंतन शक्ति का विकास करना है, जिससे बच्चे स्वतः स्फूर्त पठन एवं वाचन की ओर प्रेरित हों सकें और उनमें स्वतंत्र रूप से सीखने की प्रवृत्ति विकसित हो सके।

यह पुस्तक पाठ्यपुस्तक से इतर है। इस पुस्तक में रोचक कहानियों, कविताओं एवं महापुरुषों की जीवनियों के साथ साथ स्थानीय इतिहास, कला-संस्कृति, तीज -त्यौहार, पर्व-परंपराओं आदि की जानकारियां दी गई हैं। प्रायः ग्रामीण क्षेत्र के बच्चों को पाठ्यपुस्तक के अतिरिक्त पढ़ने के लिए पत्र-पत्रिकाएँ उपलब्ध नहीं होती, इस कारण वे बहुत-सी जरुरी जानकारियाँ प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं।

आज शिक्षा के परिदृश्य में आमूल-चूल परिवर्तन आया है। अब बच्चे स्थानीय न होकर वैश्विक हो गए हैं। ज्ञान बढ़ा है तो प्रतिस्पर्धा भी बढ़ी है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 बाल-केंद्रित शिक्षा, अनुभव आधारित शिक्षा एवं समृद्ध भाषाई शिक्षा पर विशेष बल देती है। इसलिए इस पुस्तक को तैयार करने में बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाया गया है, ताकि बच्चे केवल पढ़ना ही न सीखें, बल्कि पढ़कर समझें, सोचें और तथ्यों को अपने अनुभवों से जोड़ सकें।

हम जानते हैं कि भारत का अपना गौरवशाली और समृद्ध इतिहास रहा है। इस समृद्ध इतिहास के साथ-साथ वे राज्य के स्थानीय कला-संस्कृति, इतिहास और लोक-जीवन को जानें और उस पर गर्व कर सकें। यह इस पुस्तक का व्यापक उद्देश्य है।

यह पुस्तक प्रायोगिक संस्करण के रूप में प्रस्तुत की जा रही है। इस संदर्भ में विद्यार्थियों, शिक्षकों , पालकों एवं शिक्षाविदों से विनम्र अपेक्षा है कि वे हमें अपने बहुमूल्य सुझाव प्रदान करें, ताकि आगामी समय में इस पुस्तक को और अधिक उपयोगी, प्रभावी एवं छात्र केंद्रित बनाया जा सके।

मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक शिक्षकों के लिए शिक्षण को अधिक प्रभावी एवं रोचक बनाने में उपयोगी सिद्ध होगी तथा विद्यार्थियों के सर्वांगींण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएँगे।

इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए पुस्तक निर्माण से जुड़े सभी शिक्षाविदों, विशेषज्ञों, लेखकों एवं सहयोगियों को हार्दिक शुभकामनाएं और बधाई देता हूँ।

संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण,
रायपुर छत्तीसगढ़

शिक्षकों के लिए निर्देश

छत्तीसगढ़ शासन की विशिष्ट सोच के अनुरूप कक्षा तीसरी से आठवीं तक के विद्यार्थियों के लिए सहायक वाचन पुस्तक का निर्माण राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के द्वारा किया गया है। इस पुस्तक का उद्देश्य विद्यार्थियों में पठन के प्रति रुचि विकसित करना, स्वतः स्फूर्त वाचन की आदत डालना तथा उनकी भाषा, चिंतन क्षमता का विकास करना तथा छत्तीसगढ़ के सामाजिक परिवेश से परिचित कराना है। अतः राज्य के विद्यालय में कार्यरत शिक्षकों से अपेक्षा की जाती हैं कि वे शासन की मंशा के अनुरूप सहायक वाचन पुस्तक के प्रभावी उपयोग से बच्चों में अपेक्षित दक्षताओं का विकास के लिए आनंदमय वातावरण निर्मित करें।

शिक्षकों से निम्नलिखित बिंदुओं के अनुसार शिक्षण कार्य करने की अपेक्षा की जाती है—

1. सहायक वाचन को परीक्षा की दृष्टिकोण से प्रस्तुत न करें।बल्कि कक्षा में सहज, रोचक एवं सहभागितापूर्ण वातावरण बनाएँ, ताकि बच्चे इसे उत्साहपूर्वक पढ़ने के लिए तैयार रहे।

2. विद्यार्थियों को स्वयं पढ़ने, समझने एवं अपने शब्दों में अभिव्यक्त करने का अवसर दें।

3. बच्चों से क्रमशः सस्वर वाचन, समूह वाचन तथा मौन वाचन करवाएँ, जिससे स्पष्ट उच्चारण एवं अर्थग्रहण की क्षमता का विकास हो सके।

4. पाठों को बच्चों के परिवेश, स्थानीय संस्कृति, तीज-त्यौहार एवं दैनिक जीवन से जोड़कर समझाएँ, ताकि वे विषयवस्तु को सहज रूप से आत्मसात कर सकें। छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति, महापुरुषों, ऐतिहासिक स्थलों और जैव-विविधता पर चर्चा कर समझ विकसित करें। यदि पाठ किसी विशेष जिले या त्यौहार (जैसे: हरेली, तीजा) पर आधारित है, तो बच्चों को उनके व्यक्तिगत अनुभवों को साझा करने के लिए प्रोत्साहित करें।

5. पाठ पढ़ाने के बाद बच्चों से प्रश्न पूछें, उनके विचार सुनें तथा चर्चा कराएँ। इससे उनमें आत्मविश्वास एवं अभिव्यक्ति कौशल का विकास होगा।

6. कक्षा में कहानी कथन, चित्रांकन, भूमिका निर्वहन, कविता वाचन, समूह चर्चा

एवं लेखन जैसी गतिविधियों के माध्यम से सीखने को रोचक बनाएँ।

7. पाठों में निहित मानवीय संवेदनाओं, नैतिक मूल्यों एवं सामाजिक सरोकारों को बच्चों के जीवन से जोड़कर समझाएँ।

8. बच्चों को नियमित रूप से पुस्तक पढ़ने हेतु अतिरिक्त पठन सामग्री के उपयोग के लिए प्रेरित करें।

9. कक्षा में प्रत्येक विद्यार्थी को पढ़ने एवं बोलने का अवसर दें। धीमी गति से सीखने वाले एवं संकोची बच्चों पर विशेष ध्यान देवें।

10.महापुरुषों या लोक कथाओं पर आधारित पाठों का कक्षा में मंचन करवाएँ।

11. बच्चों को छत्तीसगढ़ के पारंपरिक खान-पान, खेलकूद, आभूषण, तीज-त्योहार या औजारों के बारे में जानकारी एकत्र करने हेतु प्रोजेक्ट कार्य दें।

13. सहायक वाचन का मूल्यांकन पारंपरिक रटने वाली पद्धति से नहीं होना चाहिए। बल्कि मूल्यांकन के लिए खुले प्रश्न पूछें, जैसे: "यदि आप उस जगह होते तो क्या करते?" या "आपको इस कहानी का कौन सा पात्र सबसे अच्छा लगा और क्यों?" आदि।

टीप - यह पुस्तक एक प्रायोगिक संस्करण है। अतः शिक्षकगण अपने अनुभव एवं सुझाव साझा करें, ताकि भविष्य में पुस्तक को और अधिक उपयोगी बनाया जा सके।

संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण,
रायपुर छत्तीसगढ़

राज्य शिक्षा स्थायी समिति, छत्तीसगढ़

नाम	पद नाम
1. श्री आलोक चक्रवाल, कुलपति, गुरु घासीदास केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बिलासपुर	- अध्यक्ष
2. संचालक, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर	- सदस्य सचिव
3. संचालक, लोक शिक्षण संचालनालय, छत्तीसगढ़	- सदस्य
4. मिशन संचालक, समग्र शिक्षा, रायपुर, छत्तीसगढ़	- सदस्य
5. डॉ. वासुदेव साहसी, सहा.प्रा., शा.जे. योगानंदम छ.ग. महाविद्यालय, रायपुर	- सदस्य
6. डॉ. सुभाष चन्द्राकर, प्राध्या., दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर	- सदस्य
7. श्री मनीष देवांगन, वि.खं. शिक्षा अधिकारी, कार्या. धरसींवा, जिला-रायपुर	- सदस्य
8.श्री नरेन्द्र सिंह राजपूत, सहा. शिक्षक, प्राथ. विद्या. सिवनी, खुर्द (बोडला), जिला-कबीरधाम	- सदस्य
9. श्री मनोज सिंह, शा. शिक्षा महाविद्यालय, बिलासपुर	- सदस्य
10. श्री दिलीप केसरवानी, पूर्व प्राचार्य, कबीर नगर, रायपुर	- सदस्य

अनुक्रमणिका

पाठ सामग्री		पृष्ठ क्रमांक
1. मैनपाट की सैर (निबंध)	लेखक मंडल	1
2. पौधे भी हमारी तरह साँस लेते हैं (आलेख)	लेखक मंडल	3
3. चल रे तुमा ....बाटे बाट (लोककथा)	लेखक मंडल	6
4. प्रकृति की सीख (कविता)	सोहन लाल द्विवेदी	9
5. भक्ति और शक्ति के प्रतीक वीर हनुमान	लेखक मंडल	10
6. वीर योद्धा - पृथ्वीराज चौहान	लेखक मंडल	11
7. पं. सुंदर लाल शर्मा (जीवनी)	लेखक मंडल	13
8. जल संस्कृति के प्रतीक : छत्तीसगढ़ के तालाब (आलेख)	लेखक मंडल	14
9. तमोर पिंगला (आलेख)	लेखक मंडल	16
10. बहादुर नरेंद्र (कहानी)	लेखक मंडल	18
11. गुरु घासीदास और सतनाम पंथ (आलेख)	डॉ.दादू लाल जोशी	21
12. देश की पहली महिला इंजीनियर : ए.ललिता (जीवनी)	लेखक मंडल	24
13. बाधाओं से भय न हमें (कविता)	लेखक मंडल	26
14. शीर्षक चुनिए (लोककथा)	लेखक मंडल	27
15. पचराही (आलेख)	लेखक मंडल	28
16. माता राजमोहनी देवी (जीवनी)	लेखक मंडल	30
17. स्वामी बने क्रांतिकारी : सुखदेव राज (कहानी)	लेखक मंडल	32
18. छत्तीसगढ़ के 'टाइगर बॉय' चेंदरू मंडावी (जीवनी)	लेखक मंडल	34
19. मरवाही का अनमोल रत्न: दुर्लभ सफेद भालू	लेखक मंडल	36
20. कलम आज उनकी जय बोल (कविता)	रामधारी सिंह दिनकर	39
21. हमारी आस्था का केंद्र-तुरतुरिया	लेखक मंडल	40
नोट्स	लेखक मंडल	42

मैनपाट की सैर

हिल-स्टेशन मैनपाट चारों ओर से प्राकृतिक सौंदर्य, जलप्रपातों से भरा-पूरा है। मैनपाट का कोना-कोना दर्शनीय है। पर्यटक यहाँ आकर अतीव सुख और शांति का अनुभव करते हैं । लोगों के शोरगुल, वाहनों की कानों को खटकने वाली ध्वनियों से मुक्त, शांत वातावरण-युक्त मैनपाट अम्बिकापुर से दक्षिण की ओर लगभग 85 किलोमीटर दूर हरी-भरी पहाड़ियों पर स्थित है । चारों ओर से घने वनों से आच्छादित यह स्थान अनेक छोटी-बड़ी नदियों से घिरा है। ये नदियाँ स्थान-स्थान पर जलप्रपात बनाकर मनोरम दृश्य उपस्थित कर देती हैं । समुद्र-तल से 1100 मीटर की ऊँचाई पर 28 वर्ग किलोमीटर में आयताकार पहाड़ी पर बसे मैनपाट के आसपास अनेक दर्शनीय स्थल हैं । इनमें टाइगर प्वाइंट, मछली प्वाइंट, मेहता प्वाइंट, दरोगा दरहा जलप्रपात, देव प्रवाह अपनी प्राकृतिक सुषमा के कारण दर्शनीय हैं।

मैनपाट के पूर्वी भाग में यहीं महादेवमुड़ा नदी बहती है। यह नदी वनों के बीच 60 मीटर की ऊँचाई से गिरती हुई एक आकर्षक जलप्रपात बनाती है । इस जल-प्रपात की धारा जब नीचे कुंड में गिरती है, तो शांत वनों के बीच मधुर संगीत उत्पन्न कर देती है । कभी इस प्रपात के आसपास वनराज भ्रमण किया करते थे, जिनके कारण इस प्रपात को 'टाइगर प्वाइंट' कहा जाता है। मुख्य मार्ग पर स्थित होने से यहाँ आना सुविधाजनक है। पर्यटकों के ठहरने के लिए यहाँ विश्रामगृह भी है।

'मछली प्वाइंट' मैनपाट से लगभग 15 किलोमीटर दूर है। चारों ओर हरियाली-ही-हरियाली। पहाड़ों पर उतर आए बादल ऐसे लगते हैं जैसे आकाश ही पहाड़ों पर उतर आया है। कभी पहले इस जलप्रपात में बड़ी-बड़ी मछलियाँ पाई जाती थीं इसलिए इसका नाम 'मछली प्वाइंट' पड़ा है।

गिरती हुई ऐसी प्रतीत होती है, मानो कोई दूध की धारा पहाड़ी से गिर रही हो। इस कारण इसे मिल्की-धारा वे अर्थात् 'दुधिया धारा' कहते हैं ।

मैनपाट में ऐसे अनेक प्राकृतिक स्थल हैं। मैनपाट से केवल 8 किलोमीटर की दूरी पर एक और प्राकृतिक स्थल हैं जिसे 'मेहता प्वाइंट' कहते हैं।

यहाँ के एक क्षेत्र में बहुत से तिब्बती परिवार भी रहते हैं। तिब्बती शरणार्थी यहाँ खेती, पशु-पालन और वस्त्र-निर्माण का धंधा करते हैं। मैनपाट में तिब्बतियों द्वारा निर्मित दरी, गलीचे (कालीन) भारत के बड़े-बड़े- नगरों में विक्रय के लिए भेजे जाते हैं।

प्रकृति का लाडला, दो संस्कृतियों का संगम, स्थल, जियो और जीने दो का उद् घोष करने वाला मैनपाट छत्तीसगढ़ का अद् भुत स्थल है।

पौधे भी हमारी तरह साँस लेते हैं

सर जगदीश चन्द्र बोस अपना विश्वप्रसिद्द प्रयोग करते हुए

उस दिन एक वैज्ञानिक को अपने प्रयोग का सार्वजनिक प्रदर्शन करना था। उसका दावा था, "पेड़-पौधे भी सुख-दुःख को महसूस करते हैं। पीड़ा पहुँचाने पर हमारी तरह रोते हैं और खुशी में हँसते भी हैं। छूने पर अहसास करते हैं। यही नहीं, यदि किसी पौधे में विष का इंजेक्शन दे दिया जाए, तो वह थोड़ी देर में मुरझा जाएगा और फिर सूख भी जाएगा।"

प्रयोग देखने के लिए कई वैज्ञानिक एवं सामान्य नागरिक भी एकत्र हुए। वैज्ञानिक ने एक पौधे में विष का इंजेक्शन दिया। सब लोग ग़ौर से देख रहे थे। लेकिन कुछ देर बाद भी, उस पौधे में कोई असर नहीं हुआ। कुछ लोग तो हँसने भी लगे। वह वैज्ञानिक आश्चर्यचकित था, किन्तु उसे अपने शोध पर पूर्ण विश्वास था।

अब उस वैज्ञानिक ने कहा, "यदि इस विष से पौधे में कोई असर नहीं हुआ, तो मेरे ऊपर भी नहीं होगा।" सिरिंज को फिर से भरकर जैसे ही इंजेक्शन को वह अपने शरीर में लगाने को हुआ, एक आदमी चिल्लाया, "रुकिए। ये असली विष है। आपने पौधे में जो इंजेक्शन पहले लगाया था, वह मात्र साधारण रंगीन पानी था। मैंने ही विष की जगह उसे बदल कर रख दिया था।" सब लोग उस आदमी को देखने लगे। चारों ओर सन्नाटा छा गया था। थोड़ी देर वह वैज्ञानिक भी चुप था। फिर उसने विष वाले इंजेक्शन को उसी पौधे में लगा दिया। इस बार पौधे पर विष का सीधा असर दिखाई दिया। वह थोड़ी देर में मुरझा गया।

बच्चो्ं! क्या तुम जानना चाहते हो, वह वैज्ञानिक कौन था? "हाँ!" बच्चों ने एक स्वर में कहा, तो शिक्षक ने विस्तार से बताया।

वे भारत के महान वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बोस थे। उनका मानना था, जब भी हम मानव और पेड़-पौधे की तुलना करते हैं। प्रायः मान लेते हैं कि पेड़-पौधों में जीव नहीं होता, लेकिन ऐसा नहीं है। पौधे भी हमारी तरह साँस लेते हैं। उनकी पत्तियाँ सूर्य के प्रकाश में भोजन तैयार करती हैं। पौधे भोजन करते हैं; बढ़ते हैं; और एक उम्र के बाद समाप्त हो जाते हैं। भारत के महान वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बोस ने अपने विज्ञान-शोध से यह सिद्ध कर दिया था।

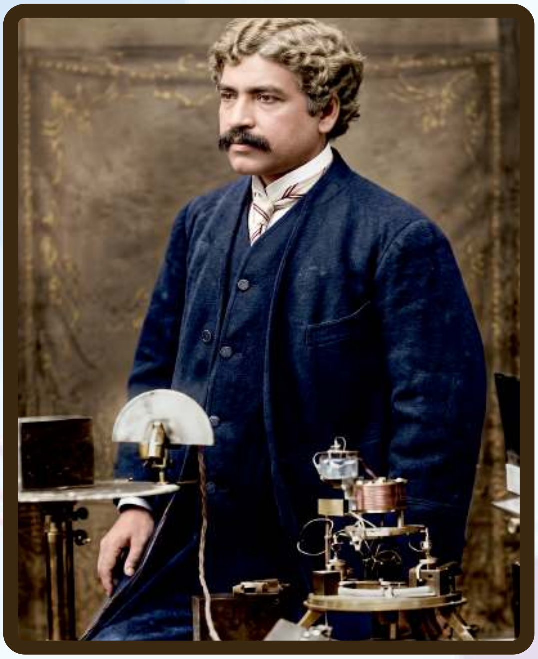

इनका जन्म 30 नवम्बर, 1858 में मैनन सिंह कस्बे में हुआ था। जो आज के बंग्लादेश में है। उनके पिता श्री भगवान चन्द्र बोस उन दिनों डिप्टी- मजिस्ट्रेट थे। जो बहुत ही महान न्यायकर्ता और अत्यधिक दयावान व्यक्ति थे। माता का नाम सुन्दरी देवी था।

तभी बीच में महेश ने पूछा, "सर! क्या ये वैज्ञानिक लोग शुरू से ही अँग्रेज़ी माध्यम से पढ़ते थे?"

नहीं बेटे! ऐसी बात नहीं है जगदीश चंद्र बोस ने प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में ही प्राप्त की थी।

वे अपने स्कूल में सभी विषयों को अच्छे ढंग पढ़ते थे। उन्हें जानवरों, पेड़-पौधों और पक्षियों से बहुत लगाव था। वे उनके व्यवहार का सूक्ष्म अध्ययन करते थे। छात्र जगदीश जन्तुओं और पेड़-पौधों की शारीरिक संरचना तथा उनके व्यवहार की तुलना करते थे। जो भी समानता या अंतर दिखता, उसे लिख लेते थे।

16 वर्ष की आयु में उन्होंने सेंट ज़ेवियर स्कूल से बहुत अच्छे अंको में हाईस्कूल उत्तीर्ण किया। उन्हें छात्रवृत्ति मिलने लगी। अब वे स्कूल से कॉलेज में पहुँच गए। पिता जी चाहते थे, जगदीश विदेश जाकर पढ़ाई करे। जगदीश चन्द्र बोस ने 1880 में लन्दन

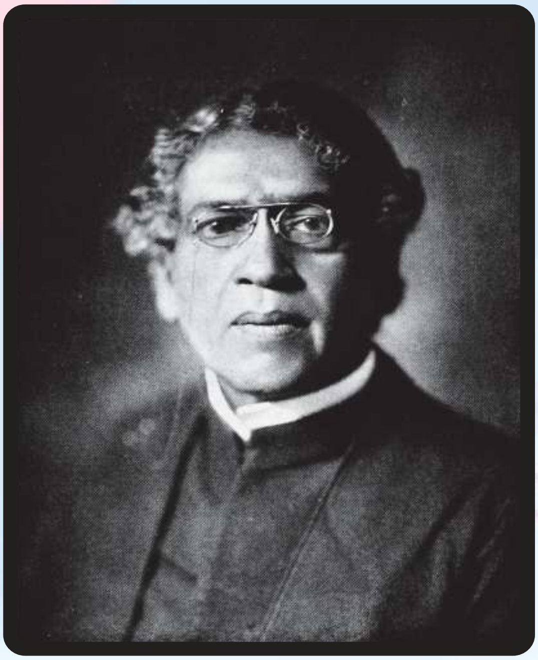

पहुँच कर चिकित्सा विज्ञान में प्रवेश लिया। वहाँ वे लगातार कई माह अस्वस्थ रहे। उनकी शिक्षा बाधित हुई। उन्हें चिकित्सा के क्षेत्र में सफलता नहीं मिली। इसके बाद उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से नेचुरल साइंस में स्नातक की डिग्री ली।

चल रे तुमा, बाटे-बाट (लोककथा)

बहुत पुरानी बात है। एक गाँव में एक डोकरी रहती थी। उसकी एक बेटी थी, जो ससुराल चली गई थी।

बेटी की ससुराल बहुत दूर थी । डोकरी को बेटी की बहुत याद आती थी। परन्तु क्या करे? बेटी की ससुराल के रास्ते में जंगल और पहाड़ थे। वहाँ बाघ, भालू और चीते का आवास था। डर के कारण रास्ता चलना कठिन था। पल-पल जीवन को खतरा था। इसी भय के कारण डोकरी कहीं भी आने-जाने से डरती थी।

एक दिन डोकरी ने अपनी बेटी के घर जाने का निश्चय किया। उसने अच्छे-अच्छे पकवान बनाए और उन्हें एक गठरी में बाँध कर चल पड़ी।

डोकरी जंगल के बीच से हो कर जा रही थी। थोड़ी दूर जाने पर डोकरी को एक बाघ दिखा। वह उसे देख कर काँपने लगी। बाघ ने पास आ कर कहा, "ऐ डोकरी! मुझे खूब भूख लगी है। मैं तुम्हें खाऊँगा।"

डोकरी ने कहा, "बेटा! देखो तो, मैं तो जर-बुखार में दुबली हो गई हूँ। अपनी बेटी के घर जा रही हूँ। वहाँ से मोटी तगड़ी हो कर आऊँगी, तब तुम मुझे खा लेना।"

बाघ खुश हो कर बोला, "हाँ-हाँ, ठीक कह रही हो, बूढ़ी अम्मा। जाओ, किन्तु शीघ्र लौट कर आना।"

डोकरी जल्दी-जल्दी चलने लगी। वह थक गई थी। थोड़ा विश्राम करने के बाद फिर चलने लगी। चलते-चलते उसे रास्ते में एक भालू ने रोक लिया।

भालू ने अपने बाल हिला कर कहा, "ऐ बूढ़ी अम्मा! मुझे बहुत भूख लगी है। मैं तुम्हें खाऊँगा।"

डोकरी बोली, "सुन बेटा, भालू। मैं अपनी बेटी के घर मोटी होने के लिए जा रही हूँ। वहाँ से आऊँगी, तो मुझे खा लेना।" भालू ने डोकरी की बात मान ली और उसे जाने दिया।

डोकरी बेचारी आगे का रास्ता तय करने लगी। वह थोड़ी ही दूर गई थी कि एक चीते से उसकी भेंट हो गई। चीते ने भी उसे खा जाने की बात कही। डोकरी ने उसे भी समझाया। चीता भी मान गया।

चलती, बैठती, विश्राम करती डोकरी आखिर अपनी बेटी के घर पहुँच ही गई। डोकरी को देख कर उसकी बेटी बहुत खुश हुई। माँ-बेटी दोनों दुःख-सुख की बातें करने लगीं। बेटी ने अपनी माँ को बढ़िया भोजन कराया। डोकरी अपनी बेटी के घर में बहुत दिन रह गई। जब उसका मन भर गया, तब एक दिन वह अपनी बेटी से बोली, "तुम्हारे घर रहते हुए बहुत दिन हो गए। अब मैं अपने घर जाऊँगी।"

उसकी बेटी ने कहा, "आज और रह जाओ, अम्मा! कल खा-पी कर चल देना।"

डोकरी बोली, "ठीक है, बेटी। एक दिन और रह जाऊँगी। किन्तु मुझे जाने की हिम्मत नहीं हो रही है। मैं तो चिंता में पड़ी हूँ।"

"कौन-सी चिंता में हो, अम्मा? मुझे भी तो बताओ," डोकरी की बेटी ने पूछा।

"कुछ उपाय बताओगी, तभी काम बनेगा बेटी," डोकरी बोली।

"हाँ अम्मा! मैं तुम्हें सही उपाय बताऊँगी," बेटी बोली।

डोकरी ने लम्बी साँस ले कर कहा, "सुन बेटी! मैं जब तुम्हारे घर आ रही थी, तब रास्ते में बाघ, भालू और चीता मुझे खाने के लिये रोक रहे थे। मैं उन्हें प्रेमपूर्वक समझा-बुझा कर आई हूँ कि बेटी के घर से मोटी हो कर आऊँगी, तब मुझे खा लेना। वे तीनों मेरी

प्रतीक्षा कर रहे होंगे। अब मैं क्या करूँ?"

अपनी माँ की बात सुन कर बेटी बोली, "तुम बिल्कुल चिंता मत करो अम्मा।" ऐसा कह कर वह एक गोल और बड़ा-सा तुमा ले कर आई। उसने उसमें खोल बनाया और उसमें तीन छेद किए। एक नाक और दो आँखों के लिए। उसी तुमा में उसने डोकरी को घुसा दिया। फिर उसे रास्ते में लुढ़काते हुए डोकरी की बेटी ने कहा, "चल रे तुमा, बाटे-बाट।"

अब तुमा रास्ते में लुढ़कता-लुढ़कता जा रहा था।

रास्ते में मिल गया चीता। चीते ने तुमा से पूछा, "क्यों रे तुमा, तूने कहीं डोकरी को देखा है?"

तुमा के भीतर से डोकरी बोली, "डोकरी देखेन न फोकली। चल रे तुमा बाटे – बाट ।"

तुमा लुढ़कते-लुढ़कते आगे चला गया। भालू भी डोकरी की प्रतीक्षा में था। तुमा को देखकर उसने भी पूछा, "क्यों रे तुमा, तूने कहीं डोकरी को देखा है?"

तुमा के भीतर से डोकरी बोली, "डोकरी देखेन न फोकली। चल रे तुमा, बाटे-बाट।"

तुमा लुढ़कते-लुढ़कते आगे चला गया। अंत में बाघ मिला। उसने भी तुमा से पूछा, "तूने डोकरी को देखा है क्या?"

डोकरी ने उसे भी वही जवाब दिया, "डोकरी देखेन न फोकली। चल रे तुमा, बाटे-बाट।"

तुमा के भीतर बैठी डोकरी लुढ़कते-लुढ़कते अपने गाँव पहुँच गई। गाँव पहुँच कर तुमा फट गया और डोकरी मुसकराती हुई बाहर निकल आई।

प्रकृति की सीख

पर्वत कहता शीश उठाकर
तुम भी ऊँचे बन जाओ।
सागर कहता लहराकर
मन में गहराई लाओ ।।

समझ रहे हो क्या कहती है
उठ-उठ, गिर-गिर तरल तरंग।
भर-लो, भर-लो अपने मन में
मीठी-मीठी मृदुल उमंग ।।

पृथ्वी कहती, धैर्य न छोड़ो
कितना ही हो सिर पर भार।
नभ कहता है फैलो इतना
ढक लो तुम सारा संसार ।।

चिड़िया कहती फुदक-फुदककर
छोटी-ओछी बातें मत कर।
तुझको करना काम बहुत है
बैठा मत रह हाथ पकड़कर ।।

भक्ति और शक्ति के प्रतीक वीर हनुमान

जब भी हम साहस, शक्ति और किसी के प्रति सच्ची निष्ठा की बात करते हैं, तो हमारे दिमाग में सबसे पहला नाम आता है—हनुमान जी का। भारतीय संस्कृति में यदि भक्ति, शक्ति और निस्वार्थ सेवा की बात होती है, तो सबसे पहले हनुमान जी का नाम आदर के साथ लिया जाता है। वे केवल बल और साहस के प्रतीक ही नहीं थे, बल्कि सच्ची श्रद्धा, विनम्रता और समर्पण के भी अद्भुत उदाहरण थे।

जब श्री राम वनवास में थे और माता सीता का रावण ने हरण कर लिया था, तब हनुमान ने अपने साहस और बुद्धिमानी से वह कार्य कर दिखाया, जिसे सुनकर आज भी लोगों के मन में उत्साह भर जाता है। समुद्र लांघकर लंका पहुँचना, माता सीता को ढूँढना, रावण की सभा में निर्भय होकर खड़ा होना और फिर लंका दहन करना—ये केवल वीरता की कहानियाँ नहीं हैं, बल्कि विश्वास और कर्तव्य की मिसाल हैं।

लेकिन हनुमान जी की सबसे बड़ी पहचान उनका बल नहीं, उनका विनम्र हृदय था। इतनी शक्ति होने के बाद भी उनके मन में कभी अहंकार नहीं आया। वे हमेशा स्वयं को श्री राम का सेवक मानते रहे। यही बात उन्हें सबसे अलग बनाती है। उन्होंने कभी अपने पराक्रम का श्रेय खुद को नहीं दिया, बल्कि हर सफलता को प्रभु राम की कृपा माना।

एक प्रसंग बहुत प्रसिद्ध है—जब किसी ने उनसे पूछा कि आपके हृदय में कौन बसता है, तो उन्होंने अपना सीना चीरकर दिखाया, और उसमें श्री राम और माता सीता का स्वरूप दिखाई दिया। यह प्रसंग हमें बताता है कि सच्ची भक्ति केवल मंदिरों में पूजा करने से नहीं, बल्कि अपने हृदय में प्रेम, विश्वास और समर्पण रखने से जन्म लेती है। हनुमान जी और श्री राम का रिश्ता सिर्फ एक राजा और सेवक का नहीं था, यह सच्ची मित्रता और अटूट विश्वास की मिसाल था।

जब लक्ष्मण जी युद्ध भूमि में मूर्छित हुए, तो हनुमान जी पूरी रात जागकर संजीवनी बूटी ढूंढने निकल पड़े। जब बूटी पहचान में नहीं आई, तो वे पूरा पहाड़ ही उठा लाए।

एक मित्र के रूप में हनुमान जी हमें सिखाते हैं कि जब हमारे अपनों को हमारी जरूरत हो, तो हमें अपनी पूरी जान लगा देनी चाहिए।

वीर योद्धा - पृथ्वीराज चौहान

पृथ्वीराज चौहान, चौहान वंश के प्रसिद्ध और शक्तिशाली राजा थे। उनकी राजधानी अजमेर और दिल्ली थी। उनका जन्म लगभग 1166 ईस्वी में हुआ माना जाता है। उनके पिता का नाम सोमेश्वर और माता का नाम कर्पूरी देवी था। बचपन से ही पृथ्वीराज साहसी, तेज बुद्धि वाले और पराक्रमी थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा राजमहल में ही हुई, जहाँ उन्होंने न केवल पढ़ाई की, बल्कि युद्ध कौशल भी सीखा।

पृथ्वीराज चौहान ने बहुत कम उम्र में ही घुड़सवारी, तीरंदाजी और तलवारबाजी में महारत हासिल कर ली थी। वे एक कुशल योद्धा थे और युद्ध के मैदान में अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध थे। उनके बारे में यह कथा बहुत प्रसिद्ध है कि वे शब्दभेदी बाण चला सकते थे, यानी केवल आवाज सुनकर निशाना लगा लेते थे। उनके दरबार में चंदबरदाई नाम के कवि थे, जो उनके घनिष्ठ मित्र भी थे। चंदबरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' नामक ग्रंथ में उनके शौर्य और पराक्रम का सुंदर वर्णन किया है।

पृथ्वीराज चौहान केवल वीर योद्धा ही नहीं, बल्कि एक न्यायप्रिय और दयालु शासक भी थे। वे अपनी प्रजा की भलाई के लिए हमेशा तत्पर रहते थे। उनके शासन में लोग सुख और शांति से रहते थे। उन्होंने अपने राज्य की सीमाओं की रक्षा के लिए कई युद्ध लड़े और अपने शत्रुओं को परास्त किया। उनकी वीरता और कुशल नेतृत्व के कारण उनका राज्य बहुत मजबूत बना रहा।

पृथ्वीराज चौहान के जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटनाएँ तराइन का प्रथम युद्ध और तराइन का द्वितीय युद्ध हैं, जो मोहम्मद गोरी के साथ लड़े गए थे। पहले युद्ध में पृथ्वीराज चौहान ने अपनी बहादुरी और रणनीति से मोहम्मद गोरी को हरा दिया था। इस विजय से उनकी कीर्ति चारों ओर फैल गई। लेकिन दूसरे युद्ध में परिस्थितियाँ बदल गईं। मोहम्मद गोरी ने अधिक तैयारी और बड़ी सेना के साथ आक्रमण किया, जिससे पृथ्वीराज चौहान को पराजय का सामना करना पड़ा।

दूसरे युद्ध में हार के बाद पृथ्वीराज चौहान को बंदी बना लिया गया और उन्हें अपने राज्य से दूर ले जाया गया। प्रचलित कथा के अनुसार, बाद में उनके मित्र चंदबरदाई भी वहाँ पहुँचे। कहा जाता है कि चंदबरदाई ने पृथ्वीराज को संकेत देने के लिए एक प्रसिद्ध दोहा कहा—

"चार बांस चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमाण,
ता ऊपर सुल्तान है, मत चूको चौहान।"

इस दोहे के माध्यम से उन्होंने दूरी और दिशा का संकेत दिया, जिससे पृथ्वीराज चौहान ने शब्दभेदी बाण चलाकर मोहम्मद गोरी को मार गिराया । यह कथा उनकी अद्भुत वीरता और कौशल को दर्शाती है और लोगों के बीच बहुत प्रसिद्ध है।

पृथ्वीराज चौहान का जीवन संघर्ष, साहस और आत्मसम्मान का उदाहरण है। उन्होंने अपने जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना किया, लेकिन कभी भी धैर्य नहीं खोया। वे अपने देश और प्रजा के लिए सदैव समर्पित रहे। आज भी पृथ्वीराज चौहान का नाम भारतीय इतिहास में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। उनकी वीरता, देशभक्ति और त्याग की कहानियाँ हमें प्रेरित करती हैं।

पं. सुंदरलाल शर्मा

बहुमुखी प्रतिभा के धनी पं. सुंदरलाल शर्मा छत्तीसगढ़ में जन जागरण तथा सामाजिक क्रांति के अग्रदूत थे। 21 दिसम्बर, सन् 1881 को राजिम के निकट महानदी के तट पर बसे ग्राम चंद्रसूर में उनका जन्म हुआ था। उनकी स्कूली शिक्षा प्राथमिक स्तर तक हुई और आगे घर पर ही स्वाध्याय से उन्होंने संस्कृत, बांग्ला, उड़िया आदि भाषाएँ सीख लीं। किशोरावस्था से वे कविताएँ, लेख तथा नाटक लिखने लगे। वे कुरीतियों को मिटाने के लिए शिक्षा के प्रचार-प्रसार को आवश्यक समझते थे । वे हिन्दी भाषा के साथ-साथ छत्तीसगढ़ी भाषा को भी महत्त्व देते थे। पं. सुंदरलाल शर्मा ने हिन्दी तथा छत्तीसगढ़ी में लगभग 18 ग्रंथों की रचना की, जिनमें 'छत्तीसगढ़ी दानलीला' चर्चित कृति है।

19 वीं सदी के अंतिम चरण में देश में राजनैतिक और सांस्कृतिक चेतना की लहरें उठ रही थीं। समाज-सुधारकों, चिंतकों तथा देशभक्तों ने परिवर्तन के इस दौर में समाज को नई सोच और नई दिशा दी। छत्तीसगढ़ में उन्होंने सामाजिक चेतना का स्वर घर-घर पहुँचाने में अविस्मरणीय कार्य किया। पं. सुंदरलाल शर्मा ने राष्ट्रीय कृषक आंदोलन, मद्यनिषेध, आदिवासी आंदोलन, स्वदेशी आंदोलन से जुड़े और स्वतंत्रता की यज्ञवेदी पर सर्वस्व अर्पित कर दिया।

छत्तीसगढ़ के ग्रामीण अंचलों में व्याप्त रूढ़िवादिता, अंधविश्वास, अस्पृश्यता तथा कुरीतियों को दूर करने के लिए उन्होंने अथक प्रयास किया। 1920 में धमतरी के पास कंडेल नहर सत्याग्रह उनके नेतृत्व में सफल रहा। पंडित सुंदरलाल शर्मा के प्रयासों से ही महात्मा गाँधी 20 दिसम्बर, 1920 को पहली बार रायपुर आए।

असहयोग आंदोलन के दौरान छत्तीसगढ़ से जेल जाने वाले व्यक्तियों में पं. सुंदरलाल शर्मा प्रमुख थे। वे जीवन पर्यंत सादा जीवन, उच्च विचार के आदर्श का पालन करते रहे। समाज सेवा में रत परिश्रम के कारण शरीर क्षीण हो गया और 28 दिसम्बर, 1940 को उनका निधन हुआ।

जल संस्कृति के प्रतीक: छत्तीसगढ़ के तालाब

'जल ही जीवन है' - यह उक्ति केवल एक वाक्य नहीं वरन् छत्तीसगढ़ की मिट्टी में रची-बसी सच्चाई है। यहाँ की धरती सदियों से वर्षा के जल को सहेजकर, स्नेहपूर्वक संचित कर, जीवन को पोषित करती आई है । इस जल-संस्कृति के सबसे सशक्त और जीवंत प्रतीक हैं। यहाँ के असंख्य तालाब, जो केवल जलाशय ही नहीं, बल्कि जनजीवन की धड़कन, संस्कृति की धरोहर और पर्यावरण की आत्मा भी हैं। जब-जब आकाश से वर्षा की बूंदें धरती पर गिरती हैं, वे केवल मिट्टी को नहीं भिगोती, बल्कि इन तालाबों के माध्यम से आने वाली पीढ़ियों के लिए जीवन का भंडार भी भर देती हैं।

छत्तीसगढ़ का इतिहास जल-संरक्षण की परंपरा से अनुप्राणित रहा है। यहाँ के पूर्वजों ने बहुत पहले यह समझ लिया था कि वर्षा क्षणिक है, पर उसकी शक्ति स्थायी बनाई जा सकती है इसलिए उन्होंने गाँवों, क़स्बों और खेतों के समीप तालाब खुदवाए, ताकि आकाश से गिरने वाली एक भी बूँद व्यर्थ न जाए। राजा हो या साधारण ग्रामीण, सभी ने जल को देवतुल्य मानकर उसका संचयन किया। आज भी तालाबों के नाम किसी दानी, किसी राजा या किसी ऐतिहासिक घटना की स्मृति से जुड़े हुए हैं । ये तालाब पत्थर और मिट्टी से बने हुए ढाँचे नहीं, बल्कि पीढ़ियों की दूरदर्शिता के मौन साक्षी हैं।

तालाबों में जल केवल वर्षा से ही नहीं आता, बल्कि प्रकृति की सूक्ष्म व्यवस्थाओं से भी जुड़ा रहता है। पहाड़ियों से बहते नाले, खेतों से फिसलता पानी और धरती की कोख में छिपी जलधाराएँ सब मिलकर तालाबों को जीवन देती हैं। वर्षा के समय जब चारों ओर पानी बहता है, तब तालाब उसे अपनी गोद में समेट लेते हैं और धीरे-धीरे धरती के भीतर पहुँचाकर भूजल को पुनः भरते हैं। इस प्रकार ये तालाब केवल जल का भंडार नहीं रहते, बल्कि धरती की प्यास बुझाने वाली अमृतधारा बन जाते हैं।

छत्तीसगढ़ का ग्रामीण जीवन इन तालाबों के बिना अधूरा है। खेतों की हरियाली, पशुओं की प्यास, मछुआरों की आजीविका और पक्षियों का कलरव सब कुछ इन्हीं पर आश्रित है। तालाबों के जल से सिंचित खेतों में धान की बालियाँ लहराती हैं, जिनसे इस प्रदेश की पहचान जुड़ी हुई है। तालाबों में पलने वाली मछलियाँ न केवल पोषण का स्रोत हैं, बल्कि हज़ारों परिवारों की आजीविका भी हैं। गर्मियों की तपती दोपहर में यही तालाब गाँव के पशुओं और मनुष्यों को राहत देते हैं। उनके तटों पर बैठकर थकी हुई आत्माएँ शीतलता पाती हैं।

तालाबों का महत्त्व केवल भौतिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और भावनात्मक भी है। अनेक त्योहार, धार्मिक अनुष्ठान और लोकपरंपराएँ इन्हीं के किनारे पनपी हैं। प्रकृति के प्रति प्रेम और कृषि परंपरा के प्रतीक भोजली और जंवारा का उत्सव पूर्वक विसर्जन इन्हीं तालाबों में किया जाता है। गाँव के बच्चे यहीं में तैरना सीखते हैं, युवाओं की हँसी यहीं की लहरों में गूँजती है और बुजुर्गों की स्मृतियाँ यहीं के जल में प्रतिबिंबित होती हैं। तालाब गाँव को जोड़ने वाली एक अदृश्य डोर की तरह होते हैं, जो समाज को एकसूत्र में बाँधते हैं।

परंतु आज यह अमूल्य विरासत संकट में है। आधुनिकता की अंधी दौड़, बढ़ता अतिक्रमण, गंदगी और उपेक्षा ने तालाबों को संकीर्ण और प्रदूषित कर दिया है। कहीं वे कचरे से पट रहे हैं, तो कहीं उनके जलस्रोत बंद हो गए हैं। वर्षा का जल जो कभी सीधे उन तालाबों में एकत्रित होती थी, वह नही हो पा रहा था। परिणामस्वरूप-भू जल स्तर गिरता जा रहा है और जल संकट गहराता जा रहा है।

यदि हमें आने वाली पीढ़ियों को जल का उपहार देना है, तो इन तालाबों को पुनः जीवित करना होगा। उनकी सफाई और उनके आसपास की हरियाली का संरक्षण अनिवार्य है। समाज को यह समझना होगा कि तालाब केवल सरकारी संपत्ति नहीं, बल्कि सामूहिक धरोहर है। जब गाँव का हर व्यक्ति इन्हें अपनी ज़िम्मेदारी मानेगा, तभी ये पुनः जीवन-से भर उठेंगे।

छत्तीसगढ़ के तालाब वास्तव में धरती की धड़कन हैं। जब तक ये भरे रहते हैं, तब तक खेतों में हरियाली, घरों में समृद्धि और प्रकृति में संतुलन बना रहता है। इन्हें बचाना केवल जल को बचाना नहीं, बल्कि अपने भविष्य, अपनी संस्कृति और अपनी जीवनधारा को बचाना है। जल से भरे ये शांत तालाब हमें यह सिखाते हैं कि सच्ची समृद्धि संग्रह में नहीं, बल्कि संरक्षण में है।

तमोर-पिंगला अभ्यारण्य

तमोर-पिंगला वन्यजीव अभ्यारण्य छत्तीसगढ़ के उस पूर्वी हिस्से में स्थित सूरजपुर जिले की प्राकृतिक धरोहरों में एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। अपने घने वनों, पहाड़ी भू-आकृति, नदी-नालों और समृद्ध जैवविविधता के कारण इसकी विशेष पहचान है। अभ्यारण्य का नाम यहाँ की दो प्रमुख प्राकृतिक इकाइयों 'तमोर पहाड़ी और पिंगला नाला' पर आधारित है। लगभग 600 वर्ग किलोमीटर से अधिक क्षेत्र में फैला यह अभ्यारण्य न केवल राज्य वरन् पूरे मध्य भारत के वन्यजीव-संरक्षण मानचित्र पर एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। बाद के वर्षों में इसे गुरु घासीदास तमोर-पिंगला टाइगर रिज़र्व के कोर क्षेत्र में सम्मिलित किया गया, जिससे इसका संरक्षणात्मक महत्त्व और अधिक बढ़ गया।

भौगोलिक दृष्टि से यह क्षेत्र छोटा नागपुर पठार की श्रेणी में आता है, जहाँ ऊँची-नीची पहाड़ियाँ, पठारी भूमि और गहरी घाटियाँ पाई जाती हैं। इन भौगोलिक विविधताओं के कारण यहाँ अनेक प्रकार के सूक्ष्म पारिस्थितिक तंत्र विकसित हुए हैं। रिहंद, मोरन और कई छोटी नदियाँ व नाले इस क्षेत्र को जीवनदायिनी जल-व्यवस्था प्रदान करते हैं। ये जलस्रोत आसपास के वनों, जीव-जंतुओं और मानव बस्तियों के लिए भी अत्यंत उपयोगी हैं। इस कारण तमोर-पिंगला केवल एक वन्यजीव अभ्यारण्य नहीं, बल्कि एक व्यापक जल और जीवन प्रणाली का आधार भी है।

यहाँ के वन मुख्यतः उष्णकटिबंधीय पर्णपाती प्रकार के हैं। साल, साजा, धावड़ा, कुसुम, बाँस और अन्य स्थानीय वृक्षों से आच्छादित ये जंगल न केवल हरे-भरे दिखाई देते हैं, बल्कि असंख्य जीवों के लिए भोजन, आश्रय और प्रजनन स्थल भी प्रदान करते हैं। बरसात के मौसम में पूरा क्षेत्र हरियाली से भर उठता है और सूखे मौसम में भी यहाँ

की वनस्पतियाँ पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखती हैं। इन वनों की उपस्थिति मिट्टी के कटाव को रोकती है और वातावरण में कार्बन-डाइऑक्साइड को अवशोषित कर जलवायु संतुलन में योगदान देती है।

वन्यजीवों की दृष्टि से तमोर-पिंगला अत्यंत समृद्ध है। यह क्षेत्र बाघ, तेंदुआ और भालू -जैसे शीर्ष शिकारी जीवों का प्राकृतिक आवास है, जो किसी भी स्वस्थ पारिस्थितिकी-तंत्र की पहचान है। इनके अतिरिक्त यहाँ गौर (भारतीय भैंसा), सांभर, चीतल, नीलगाय, चौसिंगा, चिंकारा और जंगली सूअर जैसे- शाकाहारी प्राणी भी बड़ी संख्या में पाए जाते हैं, जो खाद्य श्रृंखला को संतुलित रखते हैं। हाथियों की आवाजाही भी इस क्षेत्र में दर्ज की गई है, जो इसकी जैव-विविधता की व्यापकता को दर्शाती है। पक्षी-जीवन भी यहाँ अत्यंत समृद्ध है। सैकड़ों प्रजातियों के स्थानीय और प्रवासी पक्षी इन वनों, जलाशयों और खुले मैदानों में देखे जा सकते हैं। साथ ही, कोबरा, अजगर और अन्य सरीसृप इस क्षेत्र की प्राकृतिक विरासत के हिस्से हैं।

पर्यावरणीय दृष्टि से तमोर-पिंगला अभ्यारण्य का महत्त्व अत्यंत व्यापक है। यह क्षेत्र न केवल दुर्लभ और संकटग्रस्त प्रजातियों को सुरक्षित आश्रय देता है, बल्कि जलचक्र, वायुमंडलीय संतुलन और मिट्टी संरक्षण जैसी मूलभूत प्राकृतिक प्रक्रियाओं को भी बनाए रखता है। यहाँ से निकलने वाली नदियाँ और नाले दूर-दराज के क्षेत्रों तक पानी पहुँचाते हैं, जिससे कृषि, पेयजल और जैविक गतिविधियाँ संचालित होती हैं। गुरु घासीदास-तमोर-पिंगला टाइगर रिज़र्व का हिस्सा बनने के बाद यह क्षेत्र बाघ संरक्षण की राष्ट्रीय रणनीति में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है, क्योंकि बड़े शिकारी पूरे पारिस्थितिक तंत्र को स्वस्थ रखने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

मानव समाज के लिए भी यह अभ्यारण्य अप्रत्यक्ष रूप से अत्यंत लाभकारी है। इसके जंगल स्थानीय समुदायों को पारंपरिक आजीविका, औषधीय पौधे और प्राकृतिक संसाधन प्रदान करते हैं। साथ ही, यदि इसे संतुलित ढंग से विकसित किया जाए, तो यह इको-टूरिज्म का भी एक महत्त्वपूर्ण केंद्र बन सकता है, जिससे रोज़गार के अवसर बढ़ेंगे और संरक्षण के प्रति जागरूकता भी फैलेगी।

तमोर-पिंगला वन्यजीव अभ्यारण्य केवल एक संरक्षित जंगल नहीं, बल्कि छत्तीसगढ़ की प्राकृतिक आत्मा का प्रतीक है। इसकी हरियाली, जीव-जंतुओं की विविधता और जीवनदायिनी नदियाँ मिलकर इसे एक ऐसा क्षेत्र बनाती हैं, जिसकी रक्षा और संरक्षण न केवल आज की, बल्कि आने वाली पीढ़ियों की भी ज़िम्मेदारी है।

बहादुर नरेंद्र

आज नरेंद्र के स्कूल के शिक्षक उसे ढूँढ़ते फिर उसके घर आए थे, परन्तु वह घर पर नहीं मिला। उसके घर में ताला लगा हुआ था। नरेंद्र के दादा-दादी खेत गए हुए थे, पर नरेंद्र का पता नहीं था। वह अक्सर ऐसे ही स्कूल से ग़ायब रहता। नरेंद्र के माता-पिता शहर में रहकर काम करते थे। वे त्योहारों पर ही गाँव आते और कुछ दिन रुककर फिर शहर लौट जाते। वे चाहते थे कि नरेंद्र उनके साथ रहकर शहर के स्कूल में पढ़ाई करे। वह शहर के स्कूल के नाम से ही रोने लगता और घर से भाग जाता इसलिए उसके माता-पिता ने उसे उसके दादा-दादी के पास गाँव में पढ़ने के लिए छोड़ दिया था।

नरेंद्र का गाँव तीन ओर से खेतों से घिरा हुआ था। गाँव के एक ओर नदी बहती थी और नदी के उस पार हरा-भरा जंगल था। गाँव में उसके कई दोस्त भी थे। उसके दोस्तों में पढ़ने वाले बच्चे नहीं थे, बल्कि अपने से बड़ी उम्र के चरवाहों के साथ उसकी बड़ी दोस्ती थी।

उसके दादा-दादी सुबह खेत जाने के लिए निकलते, तो वह भी बस्ता लेकर घर से निकल जाता। जब गाँव के दूसरे बच्चे स्कूल जाते तो वह चरवाहों के साथ जंगल की ओर चला जाता। पेड़ों पर चढ़ना, बंदरों को दौड़ाना और नदी में तैरना उसके पसंदीदा खेल थे। दिनभर वह चरवाहों के साथ ऐसे ही उद्यमों में समय बिताकर शाम को घर लौट आता।

नरेंद्र के साथ उसके स्कूल में गौरी नाम की एक लड़की भी पढ़ती थी। गौरी का घर नरेंद्र के घर के सामने ही था। गौरी के पिता ने खूब सारी बकरियाँ पाल रखी थीं। उनका चरवाहा बिसनू नरेंद्र का पक्का दोस्त था। बिसनू उम्र में नरेंद्र से काफी बड़ा था और चतुर भी था। जंगल में जाकर वह किसी पेड़ के नीचे बैठकर आराम करता और झुंड से अलग हुई बकरियों को लौटाने के लिए नरेंद्र को भेजता। नरेंद्र को इस काम में बड़ा मज़ा आता था। उसने कई बार अपने दादा जी से जिद की थी कि वे उसके लिए भी

बकरियाँ खरीद दें। वह बिसनू के साथ अपनी बकरियाँ चराने जाया करेगा। पर इस बात पर उसके दादा उसे डाँट दिया करते थे। दादा कहते कि तू पढ़ता - लिखता नहीं है, दिनभर इधर - उधर घूमता रहता है। तुझे अब मैं तेरे अम्मा - बाबू के पास भेजूँगा।

दादा जी की डाँट सुनकर वह चुप हो जाया करता था। गौरी का चरवाहा बिसनू बीमार था इसलिए वह रविवार को काम पर नहीं आया था। बकरियाँ खलिहान से लगे कमरे में मिमियाँ रही थीं। गौरी के माता-पिता खलिहान में धान-मिंजाई कर रहे थे। गौरी को बुलाकर कहा कि वह बकरियों को गाँव के बाहर ले जाकर थोड़ी देर चारा चराकर ले आए। | स्कूल की छुट्टी थी, इसलिए गौरी घर पर ही थी। वह झट तैयार हो गई और बकरियों को लेकर जंगल की ओर निकल गई।

गौरी जब कभी इस तरह बकरियों को चराने ले जाती, तो एक काम और करती थी। वह स्कूल की कोई न कोई पुस्तक अपने साथ पढ़ने के लिए ले जाया करती थी। बकरियाँ जब फैलकर चारा चरने लगतीं तब वह किसी खेत की भेड़ पर अथवा ऊँचे स्थान पर बैठकर पुस्तक खोलकर पढ़ने बैठ जाती। आज भी वह अपने साथ पुस्तक लेकर आई थी। ठंड के दिन थे। तराई पर पीली - पीली धूप फैली हुई थी। बकरियाँ दूर-दूर फैलकर चारा चर रही थीं। गौरी ने बकरियों को इत्मीनान से चारा चरते देखकर चट्टान पर बैठ गई और पुस्तक खोलकर पढ़ने लगी।

गुनगुनी धूप में बैठकर पुस्तक पढ़ने में गौरी को मजा आ रहा था। अभी वह एक कहानी का एक पृष्ठ ही पढ़ पाई थी कि उसे बकरियों के बिदककर भागने की आवाज़ सुनाई दी। उसने उठकर देखा तो, एक मोटा-सा भेड़िया जंगल से उतरकर बकरियों को पकड़ने के लिए उनके पीछे दौड़ रहा था। बकरियाँ उससे जान बचाकर इधर-उधर भाग रही थीं। एक पल के लिए गौरी को कुछ समझ में नहीं आया कि वह क्या करे। फिर उसने गाँव की ओर देखकर ज़ोर की आवाज़ लगाई, "बचाओ! बचाओ! भेड़िया आया-भेड़िया आया।" पर वहाँ आसपास कोई नहीं था।

गौरी ने सोचा कि इस तरह एक जगह खड़े रहकर आवाज लगाने से भेड़िया डरेगा नहीं। वह जरूर उसकी किसी न किसी बकरी को उठाकर ले जाएगा। उसने बिना एक पल गवाएँ एक मोटी-सी लकड़ी उठाई और साहस बटोरकर भेड़िये की दिशा में दौड़ पड़ी। अब तक भेड़िए ने एक बकरी को दबोच लिया था और उसे घसीटकर जंगल की ओर ले जा रहा था। यह देखकर गौरी को बहुत गुस्सा आया। उसने फुर्ती के साथ भेड़िए

के पास पहुँचकर लकड़ी से उसके सिर पर जोर का वार किया। गौरी के वार से भेड़िया तिलमिला गया। उसके जबड़े से बकरी छूट गई , परंतु भेड़िया जैसे हार मानने के लिए तैयार ही नहीं था। उसने पलट कर गौरी पर हमला कर दिया। गौरी के हाथ से लकड़ी छूट गई और वह गिरने ही वाली थी कि दो हाथों ने पीछे से आकर उसे सँभाल लिया। गौरी ने पलट कर देखा, वहां नरेंद्र खड़ा था।

गौरी के सँभलते ही नरेंद्र ने लकड़ी उठाई और उसने पूरी ताकत से भेड़िए पर प्रहार किया। पहला प्रहार भेड़िये की पीठ पर पड़ा, जिससे वह दर्द से गुर्राया और झपट्टा मारकर नरेंद्र की ओर बढ़ा, लेकिन बहादुर नरेंद्र पीछे नहीं हटा। उसने फुर्ती से एक और वार भेड़िए के सिर पर किया। इस बार चोट गहरी लगी और भेड़िया तिलमिलाकर पीछे हट गया। पर नरेंद्र रुका नहीं। उसने लगातार डंडे से प्रहार करते हुए ऊँची आवाज़ में चिल्लाकर उसे डराया। आखिकार भेड़िया कराहता हुआ भाग खड़ा हुआ और जंगल मे गुम हो गया।

नरेंद्र हाँफ रहा था, लेकिन उसकी आँखों में जीत की चमक थी। इधर गौरी डर से काँप रही थी। वह भेड़िए के हमले से घायल हो गई थी। उसके घुटने और हाथ से खून बह रहा था।

नरेंद्र बोला, "घबराओ नहीं, मैं अभी कुछ करता हूँ। उसने अपनी कमीज़ उतारी और उसे फाड़कर पट्टी की तरह गौरी के जख्मों पर लपेट दिया।

गौरी बोली, "नरेंद्र, तुम न आते, तो भेड़िया मुझे मार ही डालता।"

नरेंद्र बोला, " मैंने तुम्हें बकरियाँ लेकर निकलते देख लिया था और तुम्हारे साथ ही आने वाला था, पर दादी ने मुझे तेल लाने दुकान भेज दिया, इसलिए तुम्हारे साथ नहीं आ पाया।थोड़ी देर बाद गौरी कुछ स्वस्थ हुई तो नरेंद्र उसे और उसकी बकरियों को लेकर उसके घर पहुँचा। गौरी के माता-पिता ने जब पूरी घटना सुनी, तो नरेंद्र को गले से लगा लिया। पूरा गाँव उसकी बहादुरी की प्रशंसा कर रहा था। दूसरे दिन फोटो सहित अखबार में उसका नाम छपा।

थोड़े दिनों बाद गणतंत्र -पर्व आया, तो सरपंच जी ने पूरे ग्रामवासियों के सामने उसे पुरस्कार देकर सम्मानित किया। लोगों से प्राप्त प्रेम, प्रोत्साहन और प्रशंसा से नरेंद्र की दिनचर्या बदल गई। अब वह पढ़ने के लिए रोज़ स्कूल जाने लगा।

गुरु घासीदास और सतनाम पंथ

छत्तीसगढ़ के महापुरुषों में संत गुरु घासीदास जी का नाम अग्रणी है। उन्होंने पीड़ित मानवता की महान सेवा की है। उन्होंने मानव-समाज में फैले अंधविश्वास, रूढ़िवाद, आपसी द्वेष और घृणा को मिटाने का प्रयास किया; जातिवाद को समाप्त कर "मनखे-मनखे एक बरोबर" (सभी मनुष्य एक बराबर हैं) का संदेश दिया। सत्य आचरण और ईश्वर के नाम-स्मरण को उन्होंने मानव-जाति के लिए उचित माना। उन्होंने जो सिद्धांत बनाए और जाति-पाति, ऊँच-नीच का भेदभाव मिटाकर सत्य - अहिंसा का पालन करते हुए जीवन जीने की सीख दी, उस पर लोगों को चलने के लिए प्रेरित किया, इन विचारों का संदेश जिसमें दिया गया हो, उसे 'सतनाम पंथ' कहते हैं।

गुरु घासीदास जी का जन्म दिनांक 18 दिसम्बर, सन् 1756 ई. को गिरौदपुरी में हुआ था। अब यह गाँव बलौदाबाजार-भाटापारा ज़िले में स्थित है। गुरु घासीदास जी की माता अमरौतिन और पिता मंहगूदास थे। ये मूलतः कृषक थे। खेतीबाड़ी से ही परिवार का जीवन-यापन होता था।

संत गुरु घासीदास जी के जन्म के पूर्व छत्तीसगढ़ की सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं थी। अशिक्षा के कारण लोग अंधविश्वास, जादू-टोने में उलझे हुए थे। समाज में छुआ-छूत का भेदभाव था। छोटी कही जाने वाली जातियों का मंदिरों में प्रवेश वर्जित था। ग़रीबों और कमज़ोरों को उचित न्याय नहीं मिलता था। इन सबके कारण समाज में दूरियाँ बढ़ रही थीं। इन सबको देख कर गुरु घासीदास जी को बहुत दुःख होता था। वे चिंता में डूबे रहते थे।

एक बार गिरौद गाँव के कुछ लोग जगन्नाथपुरी की यात्रा में निकले। गुरु घासीदास भी उस दल में शामिल हो गए।

सभी यात्री पैदल ही जगन्नाथपुरी जा रहे थे। टोली अभी सारंगढ़ के पास पहुँची थी। वहाँ गुरु घासीदास अचानक रुक गए। वे एक वृक्ष की छाया में बैठ गए। उनके मन में विचार आया, जब ईश्वर का वास मंदिरों और मूर्तियों में हो सकता है तो हमारे भीतर क्यों नहीं हो सकता? मुझे ऐसा आभास हो रहा है कि ईश्वर का वास सभी प्राणियों में है। उनका चेतन रूप ही सत्य है। मैं अब जगन्नाथपुरी नहीं जाऊँगा।

इसके उपरांत गुरु घासीदास जी सारंगढ़ से ही वापस लौट आए और उसी दिन से

दीन-दुखियों की सेवा में लग गए। गुरु घासीदास जी के पिता जड़ी-बूटी के जानकार कुशल वैद्यराज भी थे। गुरु घासीदास ने उनसे यह शिक्षा ली। वे बीमार लोगों की देखभाल और कोढ़ियों के कष्ट दूर करने के प्रयास करने लगे। भूखे-प्यासों के लिए अन्न-जल जुटाना, मुसीबत में फँसे लोगों को राहत पहुँचाना आदि जनसेवा के कार्यों में स्वयं को संलग्न कर लिया। उनके द्वारा किए जा रहे परोपकार के कार्यों को देखकर लोग उनकी खूब तारीफ़ करते। इसी कारण लोग उन्हें संत कहने लगे।

एक दिन गुरुघासीदास जी ने निर्जन स्थान पर जाकर तप करने और जीवन के रहस्यों का पता लगाने का निश्चय किया। इसके लिए वे पास के ही जंगल में स्थित छाता पहाड़ पर गए। उस पहाड़ पर एक छोटी-सी गुफा के आगे दो विशाल वृक्ष थे। उन वृक्षों में एक औरा तथा दूसरा धौंरा था। उन दोनों वृक्षों के नीचे घासीदास जी एक बड़े-से चट्टान पर अपना आसन लगाकर तप करने लगे। जंगल बहुत धना था। वहाँ अनेक हिंसक पशुओं के साथ-साथ साँप-बिच्छू आदि रहते थे। ज़हरीले जीव-जंतुओं के बीच गुरु घासीदास जी ने बिना डरे अपनी तपस्या प्रारंभ की। छह महीनों की तपस्या से उन्हें तत्त्व, ज्ञान हुआ।

मनुष्य सहित सभी प्राणियों का निर्माण मिट्टी, हवा, पानी, आग और आकाश इन्हीं पाँच तत्त्वों से हुआ है। इसलिए प्राणियों का जन्म और मरण सहज-सरल एवं अनिवार्य प्रक्रिया है। आगे चल कर उन्होंने अपने शिष्यों से यही कहा – “कठिन को सरल बना, दुर्गम को सुगम बना।” अर्थात् उन्हें समझाया कि इस सृष्टि (अनन्त ब्रह्माण्ड) के संचालनकर्ता का कोई रूप, रंग, आकार-प्रकार नहीं है। वह अदृश्य शक्ति है, जो सत्य है। इसलिए उसका नाम सत्य है। वह निर्गुण निराकार "सत्तनाम" है।

इन उपदेशों का छत्तीसगढ़ की जनता पर व्यापक प्रभाव पड़ा। देखते ही देखते लाखों लोग उनके अनुयायी बन गए। समूचे छत्तीसगढ़ में नवजागरण का दौर चल पड़ा।

गुरु घासीदास जी ने अपने उपदेशों के प्रचार-प्रसार के लिए दूर-दूर तक यात्राएँ की। वे छत्तीसगढ़ के ४२ स्थानों में गए और वहाँ जनता के साथ सत्संग किया। वे जहाँ जाते थे और ठहरते थे, उसे रावटी कहा जाता था। उन्होंने उपस्थित जन समुदाय को जो

उपदेश दिए। उसे ही कालांतर में रावटी कहा गया। उनकी कुल रावटी की संख्या उनकी यात्रा के पड़ाव की संख्या के आधार पर 42 है। ये सभी सूत्र-वाक्य हैं, जिनकी विस्तार से व्याख्या की जा सकती है। ये सभी मानव-समाज के लिए अनुकरणीय हैं।

गुरु घासीदास जी के सात उपदेश निम्नानुसार है -

1- सत्य का आचरण करो।

2 - अहिंसा का पालन करो।

3 - पर नारी को माता की तरह आदर दो।

4 - नशापान मत करो।

5 - जाति-पाती और ऊँच-नीच के भेदभाव से मुक्त रहो।

6 - मूर्ति पूजा के बजाय नाम स्मरण पर ध्यान दो।

7 - दोपहर में खेत मत जोतों

गुरु घासीदास जी आजीवन यात्रा करते रहे और लोगों को सच्चरित्र बने रहने का उपदेश देते रहे। आज उनके लाखों अनुयायी हैं। सन् 1850 ई. को 94 वर्ष की आयु में वे अपनी भौतिक काया को त्याग कर परमतत्व में विलीन हो गए।

छत्तीसगढ़ सरकार ने गुरु घासीदास जी के अनुयायियों की भावनाओं का सम्मान करते हुए गिरौदपुरी में विश्व का सबसे ऊँचा जैतखाम का निर्माण करवाया है।

गुरु घासीदास जी वास्तव में मानवतावादी और प्रकृतिवादी संत थे। मनुष्य की उच्च नैतिकता और सदाचरण पर मुख्य रूप से उनका सतनाम पंथ आधारित है। आज छत्तीसगढ़ में सामाजिक समरता के लिए गुरु घासीदास के उपदेश सदैव प्रासंगिक हैं।

देश की पहली महिला इंजीनियर – ए.ललिता

भारत की पहली महिला इंजीनियर ए.ललिता हुईं, जिनका पूरा नाम अय्यल सोमयाजुला ललिता था। वे एक इलेक्ट्रिकल इंजीनियर थीं। उस दौर में औरतों को पढ़ने-लिखने की आज़ादी कम ही थी। इन सभी सामाजिक मानदंडों के बीच ए. ललिता का स्कूल जाना, पढ़ाई करना और इंजीनियरिंग के क्षेत्र में भविष्य बनाना हम सभी के लिए प्रेणादायक है।

ए. ललिता न केवल भारत की पहली महिला इंजीनियर बनी, बल्कि महिलाओं के लिए इंजीनियरिंग क्षेत्र के दरवाज़े खोलने में भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

उनका जन्म 27 अगस्त, 1919 को चेन्नई में हुआ था। वे मेघावी छात्रा थीं। उनके पिता पप्पू सुब्बाराव इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग के प्रोफ़ेसर थे। ललिता सात भाई-बहनों में पाँचवें नंबर की संतान थीं।

उनकी शादी महज़ पंद्रह साल की उम्र में हो गई। उस समय उन्होंने सिर्फ़ मैट्रिक पास किया था। शादी के बाद अठारह वर्ष की उम्र में उन्होंने एक बेटी को जन्म दिया। सिर्फ़ चार महीने बाद पति की मृत्यु से ललिता के जीवन में दुखों का पहाड़ टूट पड़ा। एक विधवा के लिए नवजात शिशु को सँभालना एक बड़ी चुनौती थी। पति की मृत्यु के बाद ललिता के जीवन में नया दौर आया। अपनी बेटी श्यामला का जीवन सँवारने और खुद को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उन्होंने अपनी पढ़ाई जारी रखने का फैसला किया। उनके पिता पप्पू सुब्बाराव ने समाज की कुप्रथाओं को लाँघते हुए ललिता को पढ़ने का मौक़ा दिया।

लेकिन यह उसकी कहानी का अंत नहीं था। यह एक क्रांति की शुरुआत थी। एक शांत क्रांति। उनके पिता पप्पू सुब्बाराव ने ललिता में किसी पीड़िता को नहीं देखा, उन्होंने उनमें एक चिंगारी देखी। उन्होंने सहानुभूति नहीं दिखाई, उन्होंने एक नई शुरुआत की पेशकश की। उन्होंने ललिता का हाथ थामा और उसे गिंडी इंजीनियरिंग कॉलेज में ले गए, एक ऐसे क़िले में जहाँ कभी किसी महिला ने क़दम नहीं रखा था। जहाँ ए. ललिता ने मद्रास विश्वविद्यालय के इंजीनियरिंग कॉलेज से इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग की पढ़ाई की। ललिता को कॉलेज प्रशासन और अपने साथी छात्रों से पर्याप्त समर्थन मिला, जबकि वे एक बड़े पुरुष छात्र समूह में एकमात्र महिला छात्रा थीं। कॉलेज प्रशासन ने उनकी सुविधा और सुरक्षा सुनिश्चित करते हुए उनके लिए एक अलग छात्रावास की भी व्यवस्था की। अंततः 1943 में ए. ललिता इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग में स्नातक की उपाधि प्राप्त करने वाली भारत की पहली महिला बनीं। सफलता के पश्चात् कोई विशेष व्यवहार नहीं। कोई तालियाँ नहीं। बस अडिग संकल्प और मौन शक्ति। जब दुनिया शंकाओं में फुसफुसा रही थी, उन्होंने भविष्य की रूपरेखा तैयार की, भाखड़ा नांगल बाँध के लिए बिजली व्यवस्थाएँ तैयार कर भारत को गौरवान्वित किया।

कलकत्ता स्थित एसोसिएटेड इलेक्ट्रिकल इंडस्ट्रीज़ (AEI) में वे इसलिए किसी भी कार्यस्थल पर नहीं जाती थीं, क्योंकि विधवाओं को यात्रा करने की अनुमति नहीं थी। इसलिए उन्होंने अपनी मेज़ के पीछे से अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। उन्होंने समाधान निकाला, डिज़ाइन किया, और बेजोड़ उत्कृष्टता के साथ काम किया।

1964 में वे न्यूयॉर्क महिला इंजीनियरों और वैज्ञानिकों के पहले अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में साड़ी पहने, भारत का प्रतिनिधित्व करते हुए खड़ी थीं। 1966 तक वे लंदन स्थित इंस्टीट्यूट ऑफ़ इलेक्ट्रिकल इंजीनियर्स की पूर्ण सदस्य थी। वे न केवल भारत का गौरव, बल्कि एक वैश्विक शक्ति बनीं। जिन बाँधों के लिए उन्होंने काम किया है, वहाँ ग्रिडों पर लगी पट्टिकाओं को खोजेंगे, तो आपको संख्याएँ मिलेंगी। वोल्टेज, ब्लूप्रिंट प्रिंट मिलेगा, लेकिन उनका नाम नहीं है, क्योंकि ए. ललिता ने शोर नहीं मचाया, उन्होंने विद्रोह नहीं किया। उन्होंने विद्रोह को सटीकता, शालीनता और अथक शांत शक्ति के साथ पुनर्परिभाषित किया। विरोध से नहीं, बल्कि सार्थक उद्देश्य के तहत कार्य को दिशा दी। उनका कार्य असंभव के खिलाफ़ एक मौन प्रहार था। ए. ललिता आज महिला सशक्तीकरण की पर्याय है।

बाधाओं से भय न हमें

बाधाओं से भय न हमें,
हम तूफानों में चलते हैं।।
पथ चाहे घोर अँधेरा हो,
दुख- द्वंद्वों ने जब घेरा हो,
हो महावृष्टि, भीषण गर्जन,
करता हो महाकाल नर्तन,
पर कब किससे डरने वाले
हम संघर्षों में पलते हैं।
हम तूफानों में चलते हैं।।१।।
अत्याचारों की आँधी भी
जिसको निःशेष न कर पायी,
जो सत्य, चिरन्तन अक्षय है,
हम उस संस्कृति के अनुयायी,
विपदाओं के कंटक-वन में
हम अग्नि-शिखा बन जलते हैं।
हम तूफ़ानों में चलते हैं ।।२।।

शीर्षक चुनिए...

एक आदमी रेगिस्तान में दस ऊँटों को ले जा रहा था। कुछ दूर चलकर वह एक ऊँट पर बैठ गया और बाक़ी ऊँटों को गिनने लगा। कुल नौ थे। वह घबराकर उतर गया और दसवें ऊँट की खोज में वापस गया। जब ऊँट का कोई नामोनिशान नहीं दिखाई दिया, तो उसने सोचा कि वह खो गया। ढूँढना बंद कर वह हैरान और दुखी वापस लौटा, तो क्या देखता है कि पूरे के पूरे दस ऊँट खड़े हैं। उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। खुशी-खुशी वह एक ऊँट पर चढ़कर आगे बढ़ा। कुछ ही दूर जाने पर उसने साचा कि चलो, एक बार फिर ऊँटों की गिनती कर ली जाए। फिर नौ ऊँट निकले। वह हैरान था कि माजरा क्या है? वह फिर खोए हुए ऊँट को ढूँढने निकला। लेकिन वह नहीं मिला। मिलता कहाँ से? वह जल्दी-जल्दी वापस आया और जब फिर गिनती की, तो उसको यह देखकर बड़ा ताज्जुब हुआ कि उसके दसों ऊँट मज़े से धीरे-धीरे चले जा रहे थे। उसने सोचा रेगिस्तान की गर्मी की वजह से कुछ गड़बड़ी हो रही है और वह सबसे पीछे वाले ऊँट पर सवार हो गया। फिर उसने अपने ऊँटों को तीसरी बार गिना। उसको समझ में नहीं आया कि एक अभी भी क्यों कम है ?

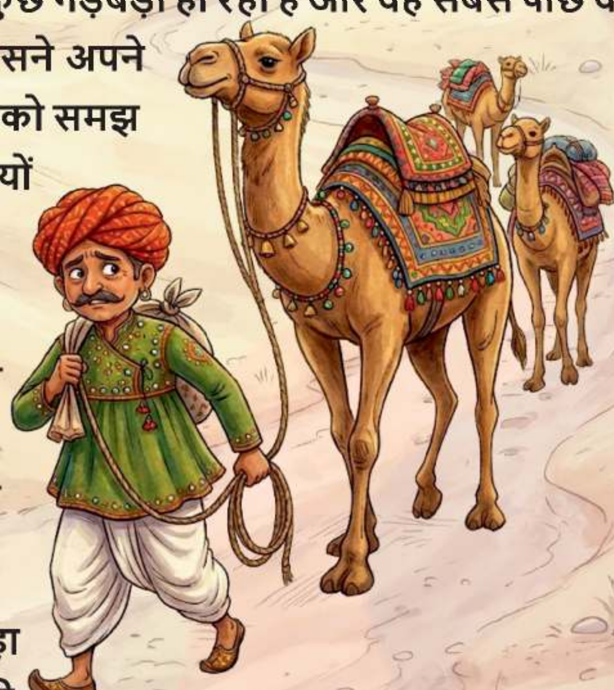

इसे शैतान की करामात समझ उसे कोसता हुआ यह नीचे उतरा और फिर एक बार ऊँटों की गिनती की, तो पूरे दस के दस थे।

उसने झुँझलाकर कहा "अच्छा दुष्ट शैतान, मैं पैदल ही चलता हूँ, जिससे मेरे सारे ऊँट सलामत रहें। ऊँट पर सवारी करके मैं अपने एक ऊँट को क्यों खोऊँ? लो, मैं पैदल ही चला।"

पचराही

छत्तीसगढ़ के कबीरधाम ज़िले में स्थित पचराही एक महत्त्वपूर्ण पुरातात्विक स्थल है, जो प्राचीन भारतीय सभ्यता और मध्यकालीन इतिहास का अमूल्य साक्ष्य प्रस्तुत करता है। यह स्थल हाफ नदी के किनारे स्थित एक छोटे-से गाँव पचराही के पास है और कवर्धा के उत्तर-पश्चिम में लगभग 45 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। पचराही को स्थानीय तौर पर कंकालिन पचराही के नाम से भी जाना जाता है, जो अपने प्राचीन अवशेषों और इतिहास के कारण राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

पचराही में सबसे पहली पुरातात्विक खुदाई 2007 में की गई थी। इस उत्खनन से यह स्पष्ट हुआ कि पचराही न केवल एक बसाहट था, बल्कि यह एक व्यस्त नगर, व्यापारिक केंद्र और महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक स्थल रहा है। खुदाई में मकानों की संरचनाएँ, मंदिर के अवशेष, कई प्रकार के सिक्के (सोने, चाँदी और ताँबे के), शिलालेख और अन्य उपयोगी वस्तुएँ मिलीं, जो इस क्षेत्र की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को दर्शाती हैं।

पचराही की खुदाई से 100 से अधिक प्राचीन सिक्कों सहित कलचुरि काल (लगभग 1000 वर्ष पहले) के सोने के सिक्के मिले हैं, जिनसे यह संकेत मिलता है कि यहाँ कभी एक विस्तृत व्यापारिक गतिविधि और प्रशासनिक व्यवस्था थी। इससे यह भी पता चलता है कि पचराही उस समय के व्यापारिक और राजनीतिक केंद्रों में एक था।

खुदाई के दौरान यहाँ हिन्दू, जैन, तथा बौद्ध परंपराओं से जुड़े धार्मिक मूर्तिकला के कई अवशेष मिले हैं। इनमें भगवान ब्रह्मा, लक्ष्मीनारायण, उमा-महेश्वर, गणेश, सरस्वती, हनुमान और दुर्लभ रूप से कृष्ण-बलराम की प्रतिमाएँ शामिल हैं। इन मूर्तियों की बारीक़ नक्काशी उस समय के शिल्प-कौशल की उत्कृष्टता को दर्शाती है।

इतना ही नहीं, पचराही के पुरातात्विक क्षेत्र से लोहे के हथियार, घरेलू उपयोग की औजारें, मिट्टी के खिलौने और मनके जैसे आभूषण भी मिले हैं, जिनसे उस समय के जीवन-यापन और रोज़मर्रा की गतिविधियों का ज्ञान मिलता है।

इन उत्खनन-कार्यों से प्राप्त अवशेष पचराही संग्रहालय में सँजोए गए हैं। इस संग्रहालय में कई मूर्तियों, शिलालेखों, हथियारों, औजारों और अन्य अवशेषों को अलग-अलग गैलरियों में प्रदर्शित किया गया है, जिससे इतिहास में रुचि रखने वाले विद्यार्थियों और शोधार्थियों को यहाँ का समृद्ध इतिहास समझने का अवसर मिलता है।

ऐसा माना जाता है कि यहाँ से पाँच रास्ते - रतनपुर, मंडला, सहसपुर, भोरमदेव (चौरागढ़) और लंजिका (लांजी) के लिए निकले हैं, इसलिए इस स्थान का नाम पचराही पड़ा। पुरातत्वविद् मानते हैं कि पचराही को इन पाँच स्थलों का संगम स्थल माना जाता रहा है, जिससे इसका धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व और भी बढ़ जाता है।

आज पचराही न केवल इतिहासकारों और पुरातत्वविदों के लिए, बल्कि सामान्य पर्यटकों के लिए भी आकर्षक स्थल बन चुका है। यह स्थल न सिर्फ छत्तीसगढ़ के प्राचीन इतिहास को उजागर करता है, बल्कि उस समय के समाज, धर्म, कला और व्यापारिक गतिविधियों का भी सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। पचराही के अवशेष यह संकेत देते हैं कि यह क्षेत्र प्राचीन काल में जीवन, संस्कृति और आर्थिक गतिविधियों का एक महत्वपूर्ण केंद्र रहा है, जिसकी और भी गहरी खुदाई से और भी नई जानकारी प्राप्त हो सकती है।

राजमोहिनी देवी

मैं कोई नेता या धर्म-गुरु नहीं हूँ। मैं तो सहज भोली-भाली एक आदिवासी नारी हूँ। महात्मा गाँधी के विचार मेरी नस-नस में समाए हैं। मैं इन विचारों से आदिवासियों का उज्ज्वल भविष्य देखने की कल्पना करती हूँ। अपनी उत्कृष्ट समाज-सेवा के लिए बड़े ही अकिंचन भाव से उक्त बातें कहने वाली माता राजमोहिनी देवी थीं।

माता राजमोहिनी का जन्म सरगुजा ज़िले के ग्राम सरसेड़ा- शारदापुर, वर्तमान वाड्रफनगर में 7 जुलाई, सन् 1914 को एक ग़रीब कृषक परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम वीरसाय तथा माता का नाम शीतला देवी था। बचपन में उन्हें रमजान के नाम से पुकारा जाता था। उनका बाल्य-काल शिक्षा-विहीन व्यतीत हुआ। उनका विवाह ग्राम गोविन्दपुर निवासी रंजीत कगौड़ से हुआ, जो एक लघु कृषक परिवार से थे। लगभग 20 वर्ष तक 'पति सेवा गुरौवासः' के मत पर चलते हुए उनका गृहस्थ जीवन व्यतीत हुआ। इस समय तक पुत्र-पुत्रियों सहित इनका भरा-पूरा परिवार था।

माता के संबंध में कई प्रकार की किवदंतियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि सन् 1951 में अवर्षा के कारण भीषण अकाल पड़ा। बच्चे-बूढ़े सभी जीविकोपार्जन के लिए त्राहि-त्राहि कर उठे। उसी समय एक दिन माता राजमोहिनी गाँव के समीप जंगल में कंद-मूल और खुखड़ी-पुटू इत्यादि बीनने गई थीं, किन्तु शाम तक उन्हें कुछ भी नहीं मिला। थक कर वे एक पेड़ के नीचे बैठकर रोने लगीं। तभी एक अजनबी ने उनसे रोने का कारण पूछा-"माँ! आप क्यों रो रही हैं?" जब माता ने अपनी करुण कथा सुनाई, तब उस अजनबी ने गाँव में हो रहे अधर्म व विभिन्न प्रकार की कुरीतियों को अकाल के लिए ज़िम्मेदार ठहराते हुए उन्हें धर्म-कर्म का सदुपदेश दिया। उस अजनबी के उपदेश से माता को आत्मज्ञान प्राप्त हुआ।

जंगल से लौटने के बाद उन्होंने सामान घर में रखा और पुनः बाहर आकर एक चट्टान पर जड़वत् तपस्या में लीन हो गईं । छह दिनों के बाद ईश्वरीय चमत्कार हुआ।

आकाश में अचानक बादल छाने लगे और कुछ समय पश्चात् घनघोर वर्षा हुई। आसपास के गाँव भी वर्षा के जल से तृप्त हो गए । माता की तपस्या का चमत्कार चारों ओर फैल गया। उनके दर्शन के लिए लोग उमड़ पड़े। सातवें दिन उन्होंने मौन तोड़ा तथा उपस्थित लोगों को मांस, मदिरा त्याग कर धार्मिक जीवन व्यतीत करने तथा स्वच्छता से रहने और प्रचलित कुरीतियों को छोड़कर राम-नाम जपने का उपदेश दिया। उनकी तपस्या के तात्कालिक प्रभाव से लोग अनुप्राणित थे। इसलिए उन्होंने संयमित एवं सादा जीवन जीने का संकल्प लिया। उन्होंने गुरुवार को लक्ष्मी का दिन मान कर खेतों में हल नहीं चलाने का निर्णय लिया।

तपस्या में मिले ज्ञान व कर्म के प्रभाव से माता ने गृहस्थ जीवन का परित्याग कर दिया। उनके द्वारा चलाया गया मद्य-निषेध आंदोलन प्रभावी सिद्ध हुआ। मद्यपान करने वाले पुरुषों के विरुद्ध उन्होंने बगावत कर दी। धीरे-धीरे पुरुषों ने भी सहयोग करना आरंभ कर दिया। महात्मा गाँधी को अपना इष्ट गुरु मानते हुए राजमोहिनी ने धर्म-कर्म के साथ राम-नाम जपते हुए सत्य अहिंसा के मार्ग पर चलने का संकल्प किया।

वे 9 जुलाई, सन् 1958 को वे सरगुजा सर्वोदय समिति की प्रथम अध्यक्ष पद पर आसीन हुईं ।बापू धर्म सभा, आदिवासी सेवा मंडल के 23 आश्रमों को संचालित करते हुए माता जी ने अनाज-कोष की स्थापना की। वे हिन्दुत्व, मद्य-निषेध, गौ-हत्या, आदिवासियों के ईसाई बनने का विरोध, ग्राम सभा से ग्राम स्वराज की कल्पना-जैसे विषयों का उपदेश एवं आन्दोलनों को प्राथमिकता देते हुए आजीवन संघर्ष किया। ग्राम सुराज्य की प्रवर्तक और धर्मपरायण माता राजमोहिनी को समाज के कमज़ोर वर्गों की उत्कृष्ट सेवा के लिए 19 नवंबर, सन् 1986 को इन्दिरा गाँधी पुरस्कार एवं 25 मार्च, सन् 1989 को राष्ट्रपति द्वारा पद्मश्री की उपाधि से सम्मानित किया गया।

माता राजमोहिनी देवी एक संत महिला थीं। उनका हृदय विशाल और विचार उत्कृष्ट थे। उनकी प्रखर साधना- पद्धति अनोखी व अनुपम थी। उनके ओजस्वी प्रवचन प्रेरणादायी होते थे। 6 जनवरी, सन् 1994 को ऐसी महिमा-मण्डित छत्तीसगढ़ की संत माता की काया लंबी बीमारी के बाद पंचतत्व में विलीन हो गई । उनके द्वारा सामाजिक उत्थान के लिए किए गए कार्य सदैव अविस्मरणीय रहेंगे।

स्वामी बने क्रांतिकारी सुखदेव राज

देश की आज़ादी हेतु प्राणों की आहुति देने वाले युवा क्रांतिकारियों की बहुत लंबी सूची है। क्रांतिकारी मंगल पांडेय से शुरू हुआ था प्रथम स्वतंत्रता संग्राम। आज़ाद होने तक रानी लक्ष्मी बाई, तात्या टोपे, सुभाषचंद्र बोस, भगत सिंह, खुदीराम बोस, मदन लाल धींगरा, रासबिहारी, यतींद्र नाथ, चंद्रशेखर आज़ाद, ऊधम सिंह, सुखदेव राज, दुर्गा भाभी, राजगुरु, राजेंद्र लाहिड़ी, बटुकेश्वर दत्त, मन्मथनाथ जैसे बहुत नाम हैं। इस संग्राम में क्रूर अँग्रेज़ शासक ने कई युवा क्रांतिकारियों को फाँसी दे दी थी, तो कुछ लोगों ने आमने-सामने मुठभेड़ में अपने प्राणों की आहुति दी।

चंद्रशेखर आज़ाद का तो संकल्प ही था, जीते जी अँग्रेज़ों के हाथ में नहीं आएँगे। हुआ भी वही, 27 फरवरी, 1931 को इलाहाबाद (प्रयागराज) के अल्फ्रेड पार्क में जब वह साथी सुखदेव राज के साथ गुप्त योजना बना रहे थे। किसी ने पुलिस अधीक्षक नॉट बॉबर को जानकारी दे दी थी। थोड़ी ही देर में अँग्रेज़ सिपाहियों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया था। आज़ाद अंतिम समय तक उनकी गोलियों का उत्तर गोली से देते रहे, किंतु जब एक ही गोली बची, तो अपने ही सिर में दागते हुए 'आज़ाद' इस दुनिया से ही आज़ाद हो गए थे।

इस मुठभेड़ के समय उनके क्रांतिकारी साथी सुखदेव राज साथ में थे। आज़ाद ने सुखदेव राज से कहा, "सुखदेव तुम यहाँ से भागो। अँग्रेज़ सिपाहियों की संख्या अधिक है। हमारे पास गोलियाँ कम हैं।" उस समय चौबीस वर्षीय सुखदेव राज दीवार फाँदकर वहाँ से भाग गए। वे रेलगाड़ी से सीधे लाहौर पहुँच गए, किंतु वहाँ पुलिस ने उन्हें गिरफ़्तार करके जेल भेज दिया। सुखदेव राज कई वर्षों तक जेल में रहे। जब वे रिहा हुए, तो क्रांतिकारियों की गतिविधियाँ मंद हो गई थी। धीरे-धीरे अँग्रेज़ भी समझ गए थे, अब यहाँ शासन करना आसान नहीं है। 1942 में गाँधी जी ने नारा दिया, 'अँग्रेज़ों, भारत

छोड़ो'। आप सब जानते हैं कि 15 अगस्त, 1947 को देश स्वतंत्र हो गया। बहुत-से लोग सत्ता में आ गए, तो कुछ लोग गुमनामी के अँधेरे में खो गए, जिसमें एक नाम क्रांतिकारी सुखदेव राज का भी है। देश आज़ाद हुआ, तो ये आज़ादी के वीर क्रांतिकारी भी आज़ाद हुए।

क्रांतिकारी सुखदेव राज, जो अंत में एक 'स्वामी' के रूप में प्रसिद्ध हुए। उनका जन्म 7 दिसम्बर, 1907 को पंजाब के लाहौर शहर के एक खत्री परिवार में हुआ था। पढ़ाई के समय वे क्रांतिकारी भगवतीचरण वोहरा के संपर्क में आए। भगवतीचरण वोहरा के माध्यम से ही सुखदेव राज का परिचय भगत सिंह से हुआ। उस समय वोहरा जी का घर क्रांतिकारियों का अड्डा था; उनकी पत्नी भी एक क्रांतिकारी के रूप में कार्य कर रही थीं, जो 'दुर्गा भाभी' के नाम से प्रसिद्ध थीं।

आज़ादी के बाद सुखदेव राज लाहौर वापस नहीं गए थे। वह आचार्य विनोबा भावे के संपर्क में आए। विनोबा जी उस समय 'भूदान आंदोलन' में सक्रिय थे। 'भूदान' का मतलब था, जो बड़े ज़मींदार थे, उनसे निवेदन करके, अपनी ज़मीन का कुछ हिस्सा भूमिहीन और ग़रीब को दान करने के लिए सहमति प्राप्त करना। सुखदेव राज अब विनोबा जी के साथ ही रहने लगे थे और 'भूदान' के तहत कार्य करने लगे।

एक बार सुखदेव राज का छत्तीसगढ़ के दुर्ग ज़िले में आना हुआ। दुर्ग शहर में एक 'कुष्ठ सेवा केंद्र' था। आचार्य विनोबा ने सुखदेव राज को कुष्ठ रोगियों की सेवा करने को कहा। सुखदेव ने सहर्ष उनकी बात को स्वीकार किया। वे कुष्ठ रोगियों की सेवा में लग गए। कुछ समय पश्चात् दुर्ग-गुंडरदेही मार्ग में अंडा नामक स्थान में एक झोपड़ी को आश्रम का स्वरूप दिया गया। यह भूमि श्रीमती सरोजनी नायकर की थी, जो एक 'लेडी हेल्थ विजिटर' थी। कहते हैं उस आश्रम में आने से रोगियों के कुष्ठ विसर्जित होने लगे, इसलिए लोग आश्रम को 'विसर्जन आश्रम' कहने लगे। सुखदेव राज की भारतीय वेशभूषा को देख लोग उन्हें 'स्वामीजी' कहने लगे। एक क्रांतिकारी से 'स्वामी' बने सुखदेव राज ने 05 जुलाई, 1973 को अपना शरीर त्याग दिया। दुर्ग की माटी में उनके सत्कर्मों की सुगंध आज भी स्थापित है, जहाँ क्षेत्र-वासियों ने उनकी मूर्ति स्थापित की है और प्रत्येक वर्ष उनकी स्मृति में विशाल मेले का आयोजन होता है।

छत्तीसगढ़ के 'टाइगर बॉय' चेंदरू मंडावी

बच्चों! क्या आप बस्तर के टाइगर ब्वॉय चेंदरू और टेंबू के बारे में जानते हैं ?

चेंदरू और उनके पालतू बाघ 'टेंबू की कहानी बस्तर के अबूझमाड़ के घने जंगलों से निकलकर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध हुई थी। यह एक आदिवासी बच्चे और एक बाघ के बीच अनूठी दोस्ती की सच्ची कहानी है।

टाइगर ब्वॉय चेंदरू और टेंबू के बारे में मुख्य बातें:

कौन थे चैवक चेंदरू मंडावी छत्तीसगढ़ के नारायणपुर ज़िले के गढ़बंगाल गाँव के रहने वाले थे। वे मुरिया जनजाति के सदस्य थे और बचपन से ही बाघों के साथ रहने और खेलने के कारण उन्हें 'टाइगर ब्वॉय' या 'बस्तर का मोगली' कहा जाता था।

चेंदरू जिस बाघ के बच्चे के साथ खेला करते थे, उसका नाम टेंबू रखा था।

टेंबू के साथ दोस्ती :

चेंदरू को बचपन में जंगल में एक बाघ का बच्चा मिला था, जिसे वे घर ले आए उसे और पाला। उन्होंने उसका नाम टेंबू रखा। टेंबू गाय और बकरी का दूध पीकर, चेंदरू के साथ पलकर ही बड़ा हुआ।

गहरी दोस्ती की कहानी:

चेंदरू और टेंबू हमेशा साथ खाते-खेलते थे और जंगल में साथ घूमते थे। इस दोस्ती को देखकर आस-पास के लोग आश्चर्यचकित रहते थे।

हॉलीवुड फ़िल्म और अंतरराष्ट्रीय प्रसिद्धिः

1950 के अंत में, स्वीडन के एक फिल्म निर्देशक आनें सक्सडॉर्फ ने चेंदरू और टेंबू की दोस्ती पर "द जंगल सागा" नामक फ़िल्म बनाई, जो 1957 में प्रदर्शित हुई। यह फ़िल्म ऑस्कर जीतने वाली फ़िल्म बनी और इस वजह से चेंदरू रातों- रात हॉलीवुड स्टार बन गए।

स्वीडन की यात्राः

फिल्म की सफलता के बाद निर्देशक चेंदरू को स्वीडन भी ले गए, जहाँ वे एक साल तक रहे। उन्हें उस समय 'ब्लैक हीरो' कहा गया।

वापसी और बाद का जीवनः

स्वीडन से लौटकर चेंदरू वापस बस्तर के अपने गाँव में रहने लगे और सादा जीवन व्यतीत किया। 18 सितंबर, 2013 को 78 वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया।

यादगार :

चेंदरू और टेंबू की दोस्ती को सम्मानित करने के लिए रायपुर की जंगल सफारी में उनकी प्रतिमाएँ स्थापित की गई हैं और नारायणपुर में उनके नाम पर 'चेंदरू गार्डन' बनाया गया है।

संक्षेप में, चेंदरू मंडावी और टेंबू की कहानी इंसान और वन्य-जीव के बीच गहरे-प्रेम और दोस्ती का एक अनूठा उदाहरण है।

मरवाही का अनमोल रत्नः दुर्लभ सफेद भालू

छत्तीसगढ़ राज्य के गौरेला-पेंड्रा मरवाही (GPM) ज़िले का नाम लेते ही वन्यजीव प्रेमियों के मन में एक अद्‌भुत जीव की छवि उभर आती है दुर्लभ सफेद भालू। यह क्षेत्र, जिसे अक्सर भालू लैंड भी कहा जाता है, सामान्य स्लॉथ भालू (Sloth Bear) की बड़ी आबादी के लिए जाना जाता है, लेकिन यहाँ समय-समय पर इनका सफेद रंग का रूप दिखना एक दुर्लभ और रोमांचक घटना होती है।

सफ़ेद भालू की पहचान और कारण:

वैज्ञानिक कारण- वन्यजीव-विशेषज्ञों के अनुसार, इन भालुओं का सफेद रंग एल्बिनिज्म (Albinism) या न्यूसिज्म़ (Loucisum) जैसी आनुवंशिक स्थितियों के कारण होता है।

सफ़ेद भालू की वैज्ञानिक पहचान:

मरवाही में दिखने वाले सफेद भालू ध्रुवीय भालू (Polar Beat) नहीं है। ये वास्तव में स्थानीय स्लॉथ भालू (Sloth Bear - Melursus ursinus) की एक ऐसी दुर्लभ प्रजाति है, जो आनुवंशिक कारणों से सफेद दिखाई देती है।

1. रंग-परिवर्तन कर कारणः एल्विनिज्म़ और ल्यूसिज्म़ यह सफेदी मुख्य रूप से निम्नलिखित आनुवंशिक स्थितियों के कारण होती है:

* एल्विनिज़्म (Albinism). यह एक जन्मजात स्थिति है, जिसमें शरीर में मेलेनिन नामक रंगद्रव्य (पिगमेंट) का उत्पादन नहीं हो पाता है। मेलेनिन की कमी के कारण त्वचा और बाल पूरी तरह सफेद दिखते हैं, और अक़्सर आँखें लाल या गुलाबी हो सकती हैं।

ल्यूसिज्म़ (Leucism): यह आंशिक रंग-हीनता है, जिसमें कुछ रंगद्रव्य कोशिकाएँ अनुपस्थित रहती हैं। ल्यूसिज्म वाले जीवों की आँखें सामान्यतः काली रहती हैं। हज़ारों स्लॉथ भालुओं में से एक में यह आनुवंशिक परिवर्तन होता है. जो उन्हें प्रकृति के बीच एक असाधारण रूप देता है। यह रंग उन्हें शिकारियों से छिपने में भले ही मुश्किल पैदा करे,

लेकिन यह उन्हें वन्यजीव-प्रेमियों के लिए आकर्षण का केंद्र भी बनाता है। इन भालुओं का दुर्लभ होना इन्हें प्रकृति का एक अनोखा खज़ाना बनाता है, क्योंकि इनकी संख्या हज़ारों में से किसी एक जानवर में ही देखने को मिलती है।

मरवाही में सफ़ेद भालू की उपस्थिति और घटनाएँ:

मरवाही वनमंडल में इन सफेद भालुओं के दिखने की खबरें समय-समय पर आती रही हैं, जिससे वन विभाग और आम जनता में हलचल मच जाती है ।

- **पुनः दर्शन:** इन भालुओं को विलुप्त मान लिया गया था, लेकिन कुछ वर्षों के अंतराल पर इनका दिखाई देना एक सुखद आश्चर्य रहा है। इन्हें अक्सर जंगल में अन्य काले स्लॉथ भालुओं के साथ घूमते हुए देखा गया है। कभी-कभी मादा भालू अपने शावकों के साथ भी।
- **ग्रामीणों का अनुभव**: ये भालू कभी-कभी पानी या भोजन की तलाश में जंगल के किनारे या यहाँ तक कि आबादी वाले क्षेत्रों के पास भी देखे गए हैं। इन घटनाओं के वीडियो अक्सर सोशल मीडिया पर वायरल होते हैं।
- **वन्यजीव संरक्षण:** जब भी इन्हें देखा जाता है, वन विभाग तुरंत सतर्क हो जाता है। इनके बचाव, स्वास्थ्य परीक्षण और सुरक्षित पुनर्वास के लिए विशेष प्रयास किए जाते हैं, खासकर जब कोई सफेद शावक माँ से बिछड़ जाता है।
- **शावकों का दिखना:** हाल ही में सफेद शावकों (Cubs) के देखे जाने की खबरें मिली हैं, जो इस बात का संकेत है कि यह आनुवंशिक लक्षण अगली पीढ़ी में भी पारित हो रहा है।
- **जनमानस की प्रतिक्रिया:** हर बार इनके दिखने पर ग्रामीण और मीडिया क्षेत्र में जुट जाते हैं। हालांकि वन विभाग हमेशा सतर्कता बरतने और भालुओं को परेशान न करने की अपील करता है।
- **संरक्षण की आवश्यकता:** मरवाही के सफेद भालू केवल एक आकर्षण नहीं हैं, बल्कि वे जैव विविधता और आनुवंशिक विशिष्टता के प्रतीक है।
- **असुरक्षा:** सफेद रंग उन्हें जंगल में छिपने (Camouflage) में मुश्किल पैदा

करता है, जिससे वे शिकारियों या मनुष्यों के आसान निशाने पर आ सकते हैं। मानव-वन्यजीव संघर्ष आबादी क्षेत्रों के पास दिखने पर मानव वन्यजीव संघर्ष का खतरा बढ़ जाता है। उपाचार वन विभाग को इनके आवास की सुरक्षा, निगरानी बढ़ाने और स्थानीय समुदायों के बीच जागरूकता फैलाने की आवश्यकता है, ताकि ये अद्‌भुत जीव सुरक्षित रह सकें।

- **संरक्षण और वन विभाग के प्रयास:** इन अनमोल जीवों के अस्तित्व को सुनिश्चित करने के लिए मरवाही वनमंडल में सक्रिय क़दम उठाए जा रहे हैं।
- **सघन निगरानी:** भालुओं के अक़्सर देखे जाने वाले क्षेत्रों (जैसे माड़ाकोट, डोंगरी) में वन गश्ती दल की संख्या बढ़ाई गई है, ताकि उनकी गतिविधियों पर नज़र रखी जा सके और किसी भी खतरे से बचाया जा सके।
- **रेस्क्यू और पुनर्वास:** यदि कोई शावक माँ से बिछड़ जाता है या घायल हो जाता है, तो वन विभाग त्वरित बचाव अभियान चलाकर उसे सुरक्षित स्थान पर ले जाता है और स्वास्थ्य-परीक्षण के बाद उसे वापस उसके परिवार से मिलाने का प्रयास करता है।
- **सामुदायिक सहभागिता:** स्थानीय समुदायों को जागरूक किया जाता है कि वे भालुओं को परेशान न करें और जंगल से सटे क्षेत्रों में कूड़ा-कचरा या भोजन न छोड़ें, जिससे मानव-वन्यजीव के मध्य संघर्ष कम हो सके।
- **आवास की सुरक्षा:** जंगली क्षेत्रों, खासकर जल-स्रोतों और भोजन उपलब्ध कराने वाले प्राकृतिक वनस्पति क्षेत्रों को अवैध गतिविधियों से बचाना प्राथमिकता है, ताकि भालुओं को प्राकृतिक रूप से जीवनयापन करने का सुरक्षित वातावरण मिल सके।

निष्कर्ष: मरवाही का सफेद भालू सिर्फ एक जानवर नहीं, बल्कि छत्तीसगढ़ की जैव विविधता की एक अनूठी निशानी है। इनका संरक्षण केवल वन विभाग की ही ज़िम्मेदारी नहीं, बल्कि प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य भी है, ताकि यह आनुवंशिक चमत्कार आने वाली पीढ़ियों के लिए भी सुरक्षित रह सके।

कलम आज उनकी जय बोल

चिटकाई जिनमें चिंगारी,
जो चढ़ गए पुण्यवेदी पर
लिए बिना गर्दन का मोल
कलम, आज उनकी जय बोल।

जो अगणित लघु दीप हमारे
तूफ़ानों में एक किनारे,
जल-जलाकर बुझ गए किसी दिन
माँगा नहीं स्नेह मुँह खोल
कलम, आज उनकी जय बोल।

पीकर जिनकी लाल शिखाएँ
उगल रही सौ लपट दिशाएँ,
जिनके सिंहनाद से सहमी
धरती रही अभी तक डोल
कलम, आज उनकी जय बोल।

अंधा चकाचौंध का मारा
क्या जाने इतिहास बेचारा,
साखी हैं उनकी महिमा के
सूर्य-चन्द्र-भूगोल-खगोल
कलम, आज उनकी जय बोल ।

हमारी आस्था का केंद्र-तुरतुरिया

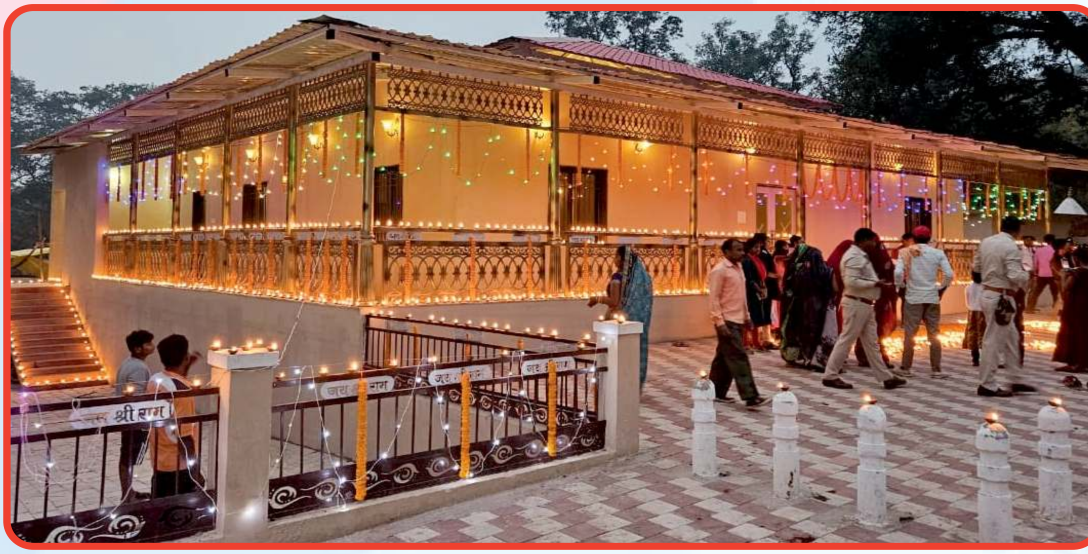

छत्तीसगढ़ में अनेक दर्शनीय एवं पर्यटन स्थल स्थल है। जो हर वर्ग के पर्यटको को आकर्षित करने में सक्षम है। उसमें एक नाम तुरतुरिया का भी है। मान्यता के अनुसार छत्तीसगढ़ भगवान राम का ननिहाल है और जब उन्हें वनवास हुआ, तब वे छत्तीसगढ़ से होते हुए दक्षिण दिशा की ओर गए। शास्त्रों और पुराणों में दक्षिण कोसल या दण्डकारण्य नाम से उल्लेखित स्थल ही वर्तमान छत्तीसगढ माना जाता है। राम वनगमन मार्ग उत्तर में कोरिया (सीतामढ़ी-हरचौका) से दक्षिण में सुकमा (रामाराम) तक जाता है। इन स्थलों में रामगढ़, खरौद, तुरतुरिया, राजिम, सिहावा, चित्रकोट आदि स्थलों का विशेष उल्लेख किया जाता है, जहाँ आज भी छत्तीसगढ़ के लोग अपनी आस्था प्रकट करते हैं।

'तुरतुरिया' एक प्राकृतिक एवं धार्मिक स्थल ही नहीं, हमारी आस्था का केंद्र भी है। तुरतुरिया बहरिया नामक गाँव के समीप बलभद्री नाले के पास स्थित है। बलभद्री नाले का उद्गम यहाँ स्थित पहाड़ी है। इसकी जलधारा पतली है, पतली जलधारा को या जलधारा से निकलने वाली आवाज को छत्तीसगढ़ी में 'तुरतुर' कहते हैं। इसी तुरतुर से इस स्थान को तुरतुरिया नाम दिया गया है। इस स्थल को 'सुरसुरी गंगा' के नाम से भी जाना जाता है। यह प्राकृतिक दृश्यों से भरा हुआ एक मनोरम स्थल है।

तुरतुरिया रायपुर से 84 किलोमीटर, बलौदाबाजार से 29 किलोमीटर, कसडोल तहसील मुख्यालय से 12 और सिरपुर से 23 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।

तुरतुरिया के समीप ही बारनवापारा अभ्यारण भी स्थित है। जनश्रुति के आधार पर यहीं पर महर्षि वाल्मीकि का आश्रम था और इस स्थल को लव-कुश का जन्मस्थली माना जाता है। धार्मिक एवं पुरातात्विक स्थल होने के साथ-साथ अपनी प्राकृतिक सुंदरता के कारण भी यह स्थल पर्यटकों और श्रद्धालुओं को अपनी ओर आकर्षित करता है। यहाँ शिव मंदिर, वाल्मीकि-लवकुश के मंदिर और मातागढ़ मंदिर स्थित हैं। यहाँ निःसंतान दंपत्ति संतान प्राप्ति के लिए मन्नत माँगते हैं। एक प्राचीन जलकुंड भी है, जहाँ गोमुख से प्राकृतिक रूप से पानी गिरता है, जिसका स्रोत अब तक अनजाना है।

लव-कुश की जन्म स्थली मातागढ़ तुरतुरिया

इस स्थान पर शिवलिंग हैं। इसके अतिरिक्त प्राचीन पाषाण स्तंभ भी काफी मात्रा में बिखरे पड़े हैं, जिनमें कलात्मक खुदाई की गई है। इसके अतिरिक्त शिलालेख भी यहाँ स्थापित हैं। सिरपुर के समीप होने के कारण यहाँ प्राचीन बुध्द की प्रतिमाएँ भी दिखाई देती हैं तथा भग्न मंदिरों के अवशेष भी मिलते हैं। इस स्थल पर बौध्द, वैष्णव तथा शैव संप्रदाय से संबंधित मूर्तिया भी पाई गई हैं। ऐसा माना जाता है कि यहाँ कभी इन तीनों संप्रदायों की मिलीजुली संस्कृति रही होगी।

यहाँ पर पौष-पूर्णिमा में यहाँ तीन दिवसीय मेला लगता है। इस मेले में बड़ी संख्या में श्रध्दालु यहाँ आकर अपनी आस्था प्रकट करते हैं।

नोट्स

नोट्स

नोट्स